अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

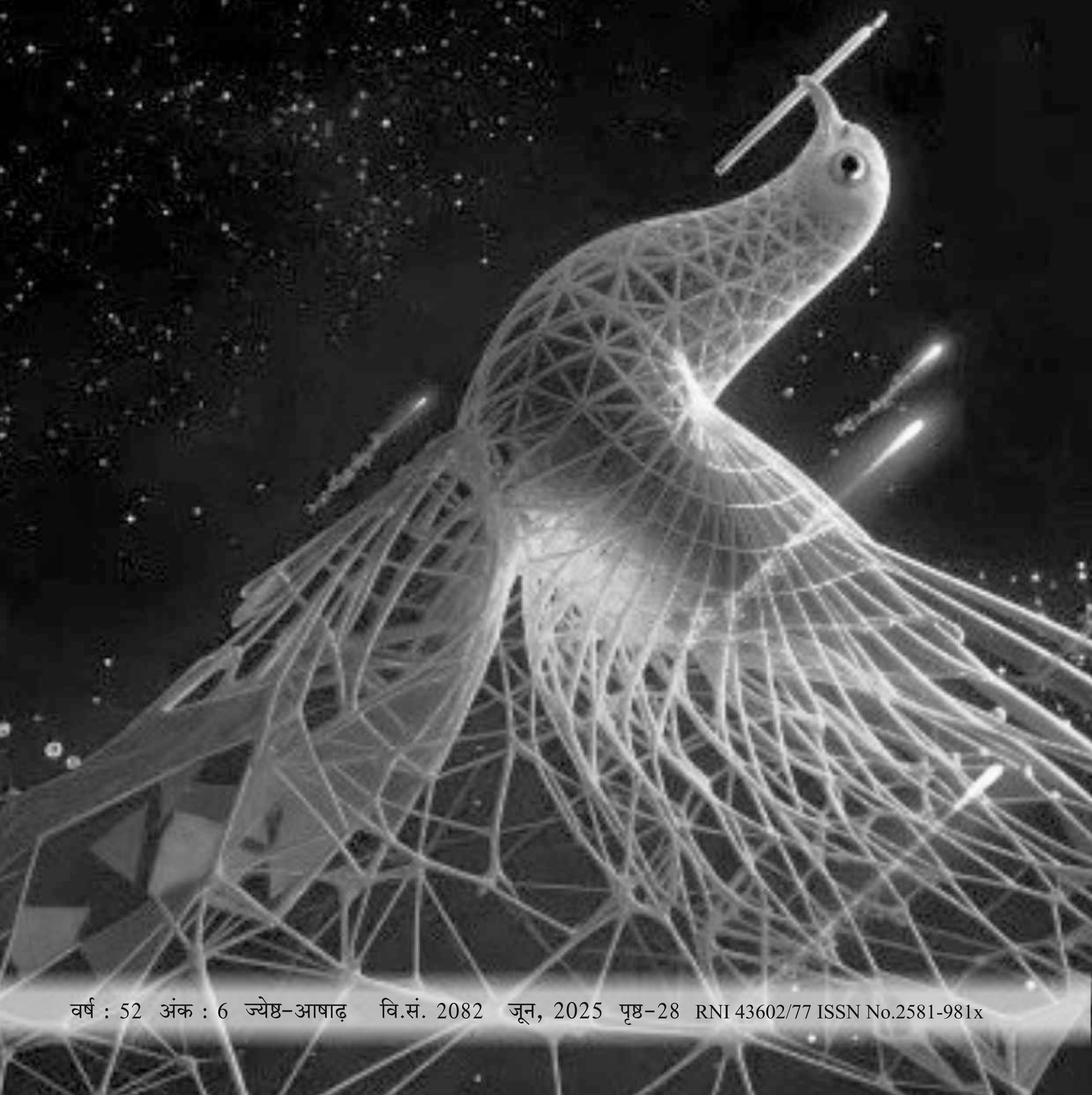

वर्ष : 52 अंक : 6 ज्येष्ठ–आषाढ़ वि.सं. 2082 जून, 2025 पृष्ठ–28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति

नव गठित कार्यकारिणी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति की साधारण सभा की बैठक में नयी कार्यकारिणी का सर्व सम्मति से गठन किया गया।

अध्यक्ष – श्री राजेन्द्र बोड़ा

संयुक्त सचिव – श्री गिरिराज मोहता

उपाध्यक्ष – श्रीमती सुशीला ओझा

संयुक्त सचिव – श्रीमती नीलम अग्रवाल

उपाध्यक्ष – श्री ओम प्रकाश टांक

सदस्य – श्री ध्रुव यादव

सचिव – श्री हिमांशु व्यास

सदस्य – श्रीमती अंजू ढड्ढा मिश्र

कोषाध्यक्ष – श्री आदिल रजा मंसूरी

सदस्य – श्री ज्ञान प्रकाश सोनी

संस्था सदस्य –

1. संधान 2. सेवा मंदिर 3. उरमूल सीमान्त 4. दूसरा दशक

5. बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति

वाणी

धर्मं यो बाधते धर्मो न स धर्मः कुधर्म तत् ।
अविरोधी तु यो धर्मः स धर्मः सत्यविक्रम ।।
– महाभारत वन पर्व

जो धर्म किसी दूसरे धर्म के मार्ग में बाधा डालता है, वह धर्म ही नहीं है। वह कुधर्म है। हे मनुष्य, जिसकी वीरता सत्य पर आधारित है, जो धर्म किसी भी चीज से संघर्ष नहीं करता, वही सच्चा धर्म है।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 52 अंक :6 ज्येष्ठ-आषाढ़ वि.सं. 2082 जून, 2025 मूल्य : पचास रुपये

क्र म

वाणी

3. महाभरत वन पर्व

संपादकीय

5. मर्यादित भाषा और व्यवहार

लेख

7. भाषा की बेमेलता का शिक्षा पर असर – **अनिरुद्ध तगाट**

9. सामाजिक व आर्थिक विकास में शिक्षा की अहम भूमिका – **कृष्ण कुमार यादव**

11. बच्चों की परीक्षा परिणाम को अभिभावक कैसे लें ! – **डॉ. लता व्यास**

13. जीवन समाज के हिसाब से क्यों जिया जाय ! – **रति सक्सेना**

14. बुकर पुरस्कार : बानू मुश्ताक ने जीतकर रचा इतिहास – **शेरिलान मोलान**

पुस्तक चर्चा

16. भारतीय राज्य शास्त्र में शासक और प्रजा के सम्बन्ध – **राजेन्द्र बोड़ा**

18. **लेख**

साम्प्रदायिकता के धुंधलके में ओझल होती साझा विरास्तें – **डॉ.कन्हैयालाल खांडपकर**

21. बहुत धीमी है इंसानी दिमाग की डेटा प्रोसेसिंग – **विवेक कुमार**

23. जीवन में त्याग का महत्व – **रणजीत सिंह कूमट**

अध्ययन

26. दुनिया के सबसे बड़े प्रदूषक पर्यावरणीय क्षति से सबसे कम प्रभावित

स्मृति शेष

26. अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के जनसांख्यिकी विशेषज्ञ डॉ. कोठारी नहीं रहे

27. समाचार

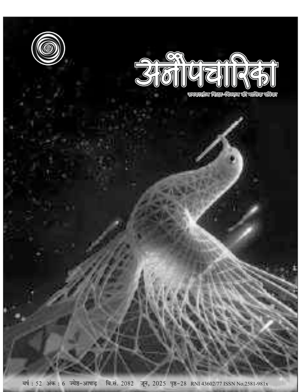

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

मर्यादित भाषा और व्यवहार

भाषा मनुष्य के व्यक्तित्व की पहचान मानी जाती है। आधुनिक मानव का आचरण उसकी भाषा से ही परिभाषित होता है। एक समय था जब सामान्य जन की भाषा और कुलीन की भाषा में फर्क साफ–साफ देखा का सकता था। हमारे यहां तो इसे रेखांकित करने के लिए प्रतीकात्मक तौर पर यह भी कहा गया कि जब तक बोले नहीं तब तक कौवे और कोयल में फर्क नहीं किया जा सकता क्योंकि दोनों ही दिखने में एक से होते हैं

श्रेष्ठ भाषा के साथ श्रेष्ठ मानवीय आचरण और व्यवहार भी आते हैं जिससे उच्चतर सांस्कृतिक मूल्य स्थापित होते हैं। भाषा की कुलीनता समाज में रोल मॉडल बनती रही है। लोक की बोली परिष्कृत हो कर कुलीन की भाषा बनती रही है जिसमें साहित्य की रचना होती रही है। तुलसी की रामायण लोक बोली/भाषा में होकर भी श्रेष्ठ साहित्य में उच्चतर स्थान पा सकी है तो इसलिए कि उसका लेखक विनयशील है। उसके सभी पात्र मर्यादा से बंधे है, खलनायक रावण तक। यह भी संयोग नहीं है कि तुलसीदास रामायण की रचना करने से पहले 'विनय पत्रिका' लिखते हैं और कहते हैं कि उनके लेखन में कोई महानता नहीं है, जो है वह प्रभु राम की महानता है जिसकी आभा में उनका लिखा दमकता है।

भारतीय संस्कृति पर गर्व होता है तो इसलिए कि उसमें उदात्त मानवीय मूल्यों की स्थापना है। ये सांस्कृतिक मूल्य हमारी लोक और साहित्यिक भाषा दोनों में परिलक्षित होते हैं। लोकतन्त्र में जब लोक सार्वभौम सत्ता का धारक बन जाता है तब निर्वाचन की प्रतिस्पर्धी राजनीति में इन मूल्यों का महत्व और बढ़ जाता है। राजनेताओं का मर्यादित आचरण और उनकी भाषा लोकतंत्र के अच्छे स्वास्थ्य का प्रतीक माना जाता रहा है। मगर इन दिनों जो दृश्य सामने आ रहे है उससे लगता है कि जैसे भाषा की मर्यादा को लांघने में सभी एक दूसरे से होड़ लगा रहे हों।

पिछली सदी के अंत तक देश में अगर किसी नेता की जुबान फिसलती भी थी, तो उसमें भी शालीनता बरकरार रहती थी। वे एक दूसरे का सम्मान रखना जानते थे। विरोधी के साथ तीखे वाक् युद्ध में भी एक गरिमा बनाये रखी जाती थी। इसी शालीनता और मर्यादा वाले आचरण से ही सदियों के सामंती पाश और गुलामी से बाहर निकल कर हम लोक के हाथों में संवैधानिक सार्वभौम सत्ता को स्थायित्व दे पाए। हम ने आपसी कषाय से ऊपर उठ कर लोकतांत्रिक संस्थाएं बनाई। निरक्षरता के विशाल रेगिस्तान के बावजूद हमारी संस्कृति ने हमें यह मर्यादा सिखाई कि लोकतंत्र में अपनी जुबान पर कैसे नियंत्रण रखा जाय। मगर इक्कीसवीं सदी के ढाई दशक तक पहुंचते लगता है सारा परिदृश्य बदल गया है। सोशल मीडिया के इस

दौर में झूठ को तेजी से फैलाने के लिए ऐसी हल्की भाषा का ही सहारा लिया जाता है जो कई बार अश्लीलता की जद में भी चली जाती है। आधुनिक यंत्र तकनीक नें ऐसे औज़ार भी दे दिये हैं जिनसे फोटो और वीडियो के साथ छेड़-छाड़ आसानी से की जा सकती है। हल्की भाषा के साथ बनावटी फोटो व वीडियो के जरिये भी सोशल मीडिया पर झूठ का कोहरा घना किया जाता है, जो अनेक बार मुख्य धारा के मीडिया में जाने-अनजाने पसरा दिया जाता है। यह इतना अधिक हो गया है कि अब उनकी मनोरंजन क्षमता भी ख़त्म होती जा रही है और लोग उनसे ऊबते जा रहे हैं। व्यावसायिक मीडिया ऐसे राजनेताओं के बोलों तथा उनकी करतूतों को और बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करता है।

यंत्र तकनीक के विस्फोट के बाद मीडिया का स्वरूप ही बदल गया। पहले सीधी, सरल बात सौम्य तरीके से कही जाती थी। समाचार और विचार के बीच एक मर्यादित दूरी होती थी। मगर नए डिजिटल मीडिया के परिदृश्य में अब कथ्य में विचार और तथ्य इस तरह घुल मिल गए हैं कि सरल बात भी जटिल बना दी जाती है ताकि कोई तमाशा खड़ा किया जा सके। चौकाना सबको भाने लगा है। इससे व्यावसायिक मीडिया को लोगों को आकर्षित करने का औज़ार मिल जाता है। इसके अलावा नए परिदृश्य में पाठक या दर्शक नहीं होते। अब उपभोक्ता होते हैं। अब नई परिभाषा में समाचारों के भी उपभोक्ता होते हैं। ऐसी हालत में समाचार भी ऐसी उपभोग की वस्तु हो गए हैं या मान लिए गए हैं जिसे उपभोक्ता को रिझाने के लिए वैसा गढ़ा जाने लगा है। ऐसे में उनकी बन आई है जो मीडिया को समाचारों की गढ़ाई में मदद करते हैं। बोलते-बोलते आपा खो देना उनका विशेष गुण होता है। ऐसे वक्ता टीवी मीडिया के प्रिय होते हैं। गैर जरूरी विषयों को तूल दे देना और गंभीर विषयों को तुच्छ या नगण्य बना कर निबटा देना कोई उनसे सीखे।

डिजिटल मंच पर सोशल मीडिया का भरपूर उपयोग या दुरुपयोग करना आज के नेताओं ने खूब सीख लिया है। राजनेता, राजनैतिक दल और सरकारें भी प्रतिस्पर्धी को धूल में मिलाने के लिए सोशल मीडिया का उपयोग करके झूठे किस्से प्रचारित करवाते हैं। इसके लिए बाकायदा अलग से दफ्तर चलते हैं जिनमें बैठे कारिंदों का यही काम होता है कि वे प्रचार और कुप्रचार का खेल खेलें और इस तरह से कोई सूचना दें कि वह सच्ची खबर लगे। कहते हैं झूठ के पांव नहीं होते। मगर अब कहा जाना चाहिए कि झूठ के पांव नहीं, पंख होते हैं और वह सच की अपेक्षा अधिक गति से सर्वत्र पहुंच जाता है।

मगर देश के युवा को राजनेताओं से ऐसी कलाबाजियों की दरकार नहीं है। उसे अपने हाथों के लिए आज हुनर चाहिए जिससे वह अपने लिए रोजगार की नई संभावनाएं ही नहीं तलाश सके बल्कि वह दूसरों को रोज़गार देने लायक भी बन सके। अमर्यादित भाषणों से उसका गुज़ारा नहीं होने वाला। उसे तमाशा दिखाने वाले नहीं देश के भविष्य के लिए ठोस सोचने वाले और उसके लिए कर गुजरने वाले नेताओं की दरकार है। मगर नेताओं को क्या सत्ता में पहुंचने की जल्दी है और जो सत्ता में है वह ताउम्र वहां बने रहने की जद्दोजहद में है। देश की युवा आबादी देश की ताकत तभी बन सकती है जब हमारे नेता हवाई जुमलेबाजियों, कभी न पूरे होने वाले वादों से लोक को भरमाना छोड़ें। क्या वक़्त की नब्ज़ कोई समझेगा? यह सौ टके का सवाल है।

लेखक मुंबई स्थित मोंक प्रयोगशाला के अर्थशास्त्र विभाग में शोधकर्ता हैं, जो उस अध्ययन के बारे में बता रहे हैं जिसमें यह जानने की कोशिश की गई कि घर पर बोली जाने वाली भाषा और स्कूल में पढ़ाई के माध्यम के बीच बेमेल होने से बच्चों की शिक्षा पर क्या असर पड़ता है? सं.

❑

अनिरुद्ध तगाट

भाषा की बेमेलता का शिक्षा पर असर

❑

दिसंबर 2024 में, केंद्र सरकार ने शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में संशोधन किया, जिसके तहत स्कूलों को कक्षा 5 और 8 में छात्रों को, यदि वे प्रगति मानकों को पूरा नहीं करते हैं, तो उन्हें उसी कक्षा में रोकने की अनुमति दी गई। यह परिवर्तन राज्यों और ग्रेड स्तरों पर इस अधिनियम की 'नो डिटेंशन पॉलिसी' के वर्षों के असंगत कार्यान्वयन के बाद हुआ है। सतत और व्यापक मूल्यांकन के आकलन और कार्यान्वयन के लिए केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड की उप-समिति की रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि गोवा, पंजाब, राजस्थान और सिक्किम ने पहले भी कक्षा 5 के बाद छात्रों को रोक लिया होगा - जबकि राष्ट्रीय दिशा-निर्देश कक्षा 8 तक कोई रोक नहीं लगाने की सलाह देते हैं।

ऐसे कई कारक हैं जो किसी बच्चे को एक कक्षा में रोके जाने से जुड़े हो सकते हैं। इनमें से कुछ को घरेलू कारकों (उदाहरण के लिए, माता-पिता की शिक्षा का स्तर) और सामाजिक-आर्थिक स्थिति (उदाहरण के लिए, किसी बच्चे के परिवार के पास उनकी प्रगति में मदद करने के लिए शिक्षा में निवेश करने के लिए पर्याप्त संसाधन नहीं हैं) से संबंधित डेटा में आसानी से कैप्चर किया जा सकता है, लेकिन अन्य को मापना कठिन है। उदाहरण के लिए, अर्थशास्त्रियों द्वारा किए गए पूर्व शोधों से पता चलता है कि शिक्षक की काबिलियत इस बात में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है कि किसी बच्चे को रोका जाता है या नहीं। यदि कोई शिक्षक लड़कों या लड़कियों के प्रति पक्षपाती है, तो वह बहुत कम शैक्षणिक आधार होने के बावजूद छात्रों के एक पूरे समूह को व्यवस्थित रूप से रोक सकता है।

हालांकि, शोध ने अभी तक बहुसांस्कृतिक और बहुभाषी समाजों में एक अन्य महत्वपूर्ण कारक पर ध्यान केंद्रित नहीं किया है जो स्कूल में शिक्षा के माध्यम से संबंधित है। स्कूल में शिक्षा के माध्यम, और किसी बच्चे के

पीछे रह जाने के बीच का संबंध सीधा नहीं है। कई अध्ययनों में, अंग्रेजी-माध्यम के स्कूलों में जाने वाले बच्चे स्कूल के परिणामों में उल्लेखनीय सुधार दिखाते हैं, भले ही अंग्रेजी वह भाषा न हो जो वे घर पर बोलते हैं। साथ ही, घर पर बोली जाने वाली भाषा में सीखने से भाषाविदों और समाजशास्त्रियों द्वारा 'भाषा पूंजी' कहा जा सकता है, यानी ज्ञान और कौशल अधिग्रहण के मामले में लाभ, क्योंकि बच्चे को पहले से ही उस भाषा पर कमांड है जिसमें उन्हें पढ़ाया जा रहा है।

हाल ही में 'एजुकेशन इकोनॉमिक्स' में प्रकाशित एक पेपर में हमने उन बच्चों के बीच ग्रेड दोहराव की जांच की जो घर पर स्कूल में इस्तेमाल की जाने वाली भाषा से अलग भाषा बोलते हैं। हमने इन बच्चों की तुलना उन बच्चों से की जिनकी घर और स्कूल की भाषा एक जैसी है। ऐसा करने के लिए, हमने बच्चों के स्तर के डेटा का उपयोग किया कि क्या छात्र एक ग्रेड दोहरा रहे थे, साथ ही घर और स्कूल से संबंधित इनपुट भी।

हमने जिन घरेलू स्तर के कारकों की जांच की, उनमें शिक्षा पर खर्च - जैसे फीस और निजी ट्यूशन - और माता-पिता की शिक्षा का स्तर शामिल था। उदाहरण के लिए, एक व्यवस्थित समीक्षा में पाया गया कि निम्न और मध्यम आय वाले घरों में, निजी ट्यूशन इस बात को प्रभावित कर सकती है कि भाषा बच्चों के साक्षरता विकास को कैसे प्रभावित करती है। स्कूल स्तर पर, मुख्य इनपुट में छात्रवृत्ति, कक्षा का बुनियादी ढांचा और शिक्षक की गुणवत्ता शामिल थी। बुनियादी ढांचे से परे, भारत और अन्य निम्न और मध्यम आय वाले देशों के अध्ययन बताते हैं कि मध्या भोजन (1998 और 2005 के बीच) जैसे प्रावधानों ने उपस्थिति और अन्य बच्चों के परिणामों पर सकारात्मक प्रभाव डाला है। हमने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (एनएसएस) के 75वें दौर के राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) की शुरुआत से पहले का डेटा का इस्तेमाल किया, जो जुलाई 2017 और जून 2018 के बीच आयोजित किया गया था। इस दौर में पूरे भारत में एक लाख से अधिक बच्चे शामिल थे। सांख्यिकीय मॉडल का उपयोग करते हुए, हमने कक्षा दोहराव से जुड़े कारकों की जांच की।

इसके कुछ प्रमुख निष्कर्षों में एक मुख्य निष्कर्ष यह है कि भारतीय विद्यालयों में शिक्षण माध्यम में व्यापक बदलावों से बच्चों के एक विशिष्ट उपसमूह के प्रभावित होने की अधिक संभावना रहती है। एनईपी, जो बच्चों की मातृभाषा या स्थानीय भाषा को शिक्षण माध्यम के रूप में उपयोग करने की वकालत करता है, अभी तक सभी राज्यों में पूरी तरह से लागू नहीं हुआ है। इसलिए गैर-हिंदी भाषी राज्यों को सावधानीपूर्वक विचार करना चाहिए कि शिक्षण माध्यम में इस तरह के बदलाव का लड़कियों पर विशेष रूप से क्या प्रभाव पड़ सकता है। उदाहरण के लिए, अध्ययन में पाया गया कि महाराष्ट्र और आंध्र प्रदेश जैसे गैर-हिंदी भाषी राज्यों में, गैर-अंग्रेजी माध्यम वाले स्कूलों में पढ़ने वाली लड़कियों को कक्षा में दोहराव का अधिक जोखिम होता है, जब उनकी घरेलू भाषा शिक्षण की भाषा से भिन्न होती है - इन संदर्भों में भाषा बेमेल के स्पष्ट लिंग प्रभाव को उजागर करता है।

एक और निहितार्थ शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में प्रवासियों के बच्चों से संबंधित है। दूसरे राज्य में प्रवास करने वाले परिवारों के छात्रों को घरेलू भाषा का लाभ नहीं मिल सकता है, जो स्थानीय वक्ताओं को तब मिलता है जब शिक्षा क्षेत्रीय भाषा में दी जाती है। जबकि हमारा डेटासेट, जो राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिनिधि सर्वेक्षण से लिया गया है, विविध क्षेत्रों को कवर करता है, यह नमूने के भीतर अंतरराज्यीय प्रवासी परिवारों के अनुपात पर विशिष्ट आँकड़े प्रदान नहीं करता है, जिससे उनके विशिष्ट प्रतिनिधित्व का आकलन करने की हमारी क्षमता सीमित हो जाती है। भविष्य के शोध में अंग्रेजी-माध्यम के स्कूलों का अध्ययन करने पर विचार करना चाहिए, विशेष रूप से जहां घर पर अंग्रेजी बोली जाती है - भले ही मूल भाषा के रूप में न हो। इन सेटिंग्स में भाषा विसंगति और ग्रेड दोहराव के बीच संबंध को बेहतर ढंग से समझने के लिए एनएसएस या अन्य स्रोतों से अधिक डेटा की आवश्यकता है, खासकर जब अंग्रेजी-माध्यम स्कूली शिक्षा माता-पिता के लिए सामाजिक स्थिति का संकेत देती है, और अक्सर अमीर घरों और ऊपर की ओर सामाजिक गतिशीलता की आकांक्षाओं से जुड़ी होती है।

हमारे निष्कर्ष कारकों की एक जटिल परस्पर क्रिया का सुझाव देते हैं जिसके माध्यम से भाषा विसंगति शैक्षिक परिणामों को प्रभावित कर सकती है। यह समझा जाना आवश्यक है कि वे क्षेत्रों में लड़कों और लड़कियों को अलग-अलग तरीके से कैसे प्रभावित कर सकते हैं। ❑

सामाजिक व आर्थिक विकास में शिक्षा की अहम भूमिका

लेखक उत्तर गुजरात परिक्षेत्र, अहमदाबाद में पोस्टमास्टर जनरल पद संभाले वरिष्ठ भारतीय प्रशासनिक अधिकारी हैं, जो शिक्षा के प्रति अपने सरोकार प्रस्तुर कर रहे हैं। सं.

कृष्ण कुमार यादव

भारतीय संस्कृति का एक सूत्र वाक्य है–'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' अंधेरे से उजाले की ओर ले जाने की इस प्रक्रिया में शिक्षा का बहुत बड़ा योगदान है। भारतीय परम्परा में शिक्षा को शरीर, मन और आत्मा के विकास द्वारा मुक्ति का साधन माना गया है। शिक्षा मानव को उस सोपान पर ले जाती है जहाँ वह अपने समग्र व्यक्तित्व का विकास कर सकता है। इस समग्र व्यक्तित्व विकास में सिर्फ भौतिक परिलब्धियाँ ही नहीं बल्कि शारीरिक व मानसिक विकास के साथ-साथ बौद्धिक परिमार्जन, सांस्कृतिक चेतना एवं नैतिक व सामाजिक मूल्यों का उन्नयन भी महत्वपूर्ण है। स्वामी विवेकानंद के शब्द यहाँ याद आते हैं–''वास्तव में सभी प्रकार की शिक्षा और अभ्यास का उद्देश्य 'मनुष्य निर्माण' ही होना चाहिए। सारे प्रशिक्षणों का अंतिम ध्येय मनुष्य का विकास करना ही है। जिस अभ्यास से मनुष्य की इच्छाशक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है शिक्षा।''

वेदांतों में तो यहाँ तक लिखा गया है कि–''समस्त ज्ञान हमारे अंदर ही विद्यमान है। एक शिशु में भी है, केवल उसे जागृत करना है। शिशु में 'ज्ञान' का जागृत होना ही शिक्षा कहलाती है।

'शिक्षा' शब्द संस्कृत भाषा के 'शिक्षाविद्योपादाने' से निष्पन्न है, जिसका अर्थ है– 'विद्या का उपादान।' 'उप' माने 'समीप' एवं 'आदान' माने 'ग्रहण' अर्थात किसी के समीप जाकर विद्या ग्रहण करना। इसी परिभाषा के अनुसार प्राचीन काल में गुरुकुल परंपरा थी, जहाँ राजा व रंक दोनों एक साथ गुरु के सान्निध्य में शिक्षा ग्रहण करते थे। इस शिक्षा से जहाँ घर एवं परिवार के प्रति आसक्ति दूर होती थी, वहीं समभाव भी पैदा होता था। यह शिक्षा मात्र किताबी नहीं थी बल्कि इसमें आचरण, नैतिक मूल्य, संस्कार, बौद्धिक परिमार्जन, भावनात्मक विकास, शारीरिक स्वास्थ्य एवं प्रकृति व अन्य प्राणियों का साहचर्य शामिल था। पाश्चात्य दार्शनिक काण्ट के शब्द गौरतलब हैं–''शिक्षा व्यक्ति की उस पूर्णता का विकास है, जिस पर वह पहुँच सकता है।''

यथार्थ के धरातल पर आज शिक्षा की कसौटी ही बदल गई है। शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य अच्छा कैरियर बनाना हो गया है। पढ़ाई में कोई कितना भी निपुण हो, परंतु बिना अच्छे कैरियर के उसका कोई मोल नहीं रह गया। कभी साहचर्य और समन्वय शिक्षा के अभिन्न अंग थे, पर अब तो इसने विद्यार्थियों को आपस में ही प्रतिस्पर्धी बना दिया है। किताबी कीड़े बनाती शिक्षा की कसौटी पास या फेल होने तक रह गई है। कभी कोई फेल होने की आशंका में आत्महत्या कर रहा है तो कोई कम अंक पाने पर। आत्मोन्नति पर भौतिक उपलब्धियाँ और पदोन्नति हावी है।

महात्मा गाँधी ने कहा था कि- जिस शिक्षा का असर हमारे चरित्र पर नहीं होता, वह कुछ काम की नहीं होती। पर शिक्षा का सीधा संबंध आज रोजगार से जुड़ गया है। ऐसे में प्रतिस्पर्धा बढ़ना लाजिमी भी है। इस प्रतिस्पर्धा की आड़ में शिक्षा में कुकुरमुत्तों की तरह फैलते कॉलेजों एवं कोचिंग संस्थाओं ने अच्छा-खासा आर्थिक साम्राज्य खड़ा कर लिया है। यहाँ शिक्षा की बकायदा कीमत वसूल की जाती है, ऐसे में अभिभावकों एवं विद्यार्थियों पर दबाव पड़ना स्वाभाविक है।

भारत विश्व की सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था वाला देश है। आज हम व्यापक भूमंडलीकरण तथा गहन प्रतिस्पर्धा के कठिन दौर से गुजर रहे हैं। विज्ञान व प्रौद्योगिकी का तेज गति से विस्तार हो रहा है। यह क्षेत्र लगातार अंतर आयामी, बहुआयामी और बहुद्देशीय होता जा रहा है। भारत के पास उन बड़ी शक्तियों में शामिल होने की पूरी क्षमता है, जिनकी 21वीं सदी में प्रमुख भूमिका होगी। ऐसे में यदि भारत की युवा शक्ति को सही ढंग से तराशा और संवारा जाए तो वह राष्ट्रीय गौरव का एक नया इतिहास रच सकती है।

बदलाव प्रकृति का नियम है और शिक्षा भी इससे अछूती नहीं रही। आज शिक्षा अपने परंपरागत स्वरुप से हटकर 'ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था' की ओर अग्रसर है। शिक्षा और रोजगार में अनन्य संबंध एवं तद्रुसार उन्नत मानव संसाधनों के साथ विकास दर की उँचाइयों को छूना इसका ध्येय है। जैसे-जैसे सेवा क्षेत्र का विस्तार हो रहा है, वैसे-वैसे तमाम नए उद्यम भी सामने आ रहे हैं। इनके लिए दक्ष मानव संसाधन की आवश्यकता है और साथ ही इस काम के लिए इन्हें विशेष कौशल प्रशिक्षण देने की भी आवश्यकता है। इसमें कोई शक नहीं कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र होने के साथ-साथ सबसे बड़ा बाजार भी मुहैया कराता है। ऐसे में शिक्षा को उत्पादन से जोड़ वांछित, सार्थक और लाभदायक योगदान की अपेक्षा की जा रही है।

आज शिक्षा अपने परंपरागत स्वरुप से हटकर 'ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था' की ओर अग्रसर है। शिक्षा और रोजगार में अनन्य संबंध एवं तद्रुसार उन्नत मानव संसाधनों के साथ विकास दर की उँचाइयों को छूना इसका ध्येय है। जैसे-जैसे सेवा क्षेत्र का विस्तार हो रहा है, वैसे-वैसे तमाम नए उद्यम भी सामने आ रहे हैं। इनके लिए दक्ष मानव संसाधन की आवश्यकता है और साथ ही इस काम के लिए इन्हें विशेष कौशल प्रशिक्षण देने की भी आवश्यकता है। इसमें कोई शक नहीं कि भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक राष्ट्र होने के साथ-साथ सबसे बड़ा बाजार भी मुहैया कराता है।

शिक्षा का स्वरुप कुछ भी हो, पर सब के लिए शिक्षा बेहद जरुरी है। सामाजिक व आर्थिक विकास में शिक्षा की अहम् भूमिका है। शिक्षा व्यक्ति के भौतिक और नैतिक दोनों प्रकार के विकास का आधार तैयार करती है। यह हमारी संवेदनाओं और अवधारणाओं को परिष्कृत बनाती है, जिससे मन-मस्तिष्क को स्वतंत्रता और उनके बीच तालमेल स्थापित करती है और वैज्ञानिक दृष्टि के विकास में सहायता मिलती है। शिक्षा ज्ञान, बुद्धि और कौशल को समृद्ध बनाती है। प्राथमिक स्तर पर स्कूलों में संसाधनों व अध्यापकों की सुनिश्चितता, उच्च स्तर पर ज्ञान में प्रवीणता हासिल करने के साथ-साथ नए विचारों व सिद्धान्तों का उद्भव एवं व्यावहारिक जीवन में उनका समसामयिक प्रयोग भी अपेक्षित है।

तमाम नियम-कानूनों के बावजूद परीक्षाओं में धांधली, विद्यार्थियों का शोषण एवं जातिवादी राजनीति से शैक्षणिक परिसरों की मुक्ति ही अंततः भारत को एक सुखी-समृद्ध-शिक्षित राष्ट्र बना सकेगा। भारतीय परिप्रेक्ष्य में प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के शब्द आज भी प्रासंगिक हैं- भारत को अपने लिये ऐसी संस्कृति तथा शिक्षा का चयन करना होगा जो कि प्राचीन संस्कृति की उत्तमता से प्रेरित हो एवं इसके साथ ही साथ वर्तमान माँगों की भी उपेक्षा न कर सके। ❑

बच्चों के परीक्षा परिणाम को अभिभावक कैसे लें!

महाविद्यालय के प्रिंसिपल पद से सेवानिवृत्त शिक्षिका अभिभावकों को सलाह दे रही हैं कि वे अपने बच्चों को परीक्षाओं में ऊंचे अंक पाने के तनाव में न डालें बल्कि उन्हें अपनी प्रतिभा व रुचि के अनुसार खिलने के लिए सकारात्मक रूप से प्रोत्साहित करें। सं.

डॉ. लता व्यास

अलीगढ़ के एक शिक्षा अधिकारी ने अपने बेटे के 12वीं बोर्ड परीक्षा में 60 प्रतिशत अंकों के साथ उत्तीर्ण होने पर जश्न मनाकर अभिभावकों को यह दिखाया कि बच्चों के कम अंकों को कैसे लिया जाना चाहिए।

अलीगढ़ के बेसिक शिक्षा अधिकारी राकेश सिंह ने हाल ही में परीक्षा परिणाम घोषित होने के कुछ घंटों बाद एक्स पर लिखा, मेरे बेटे ऋषि ने 60 प्रतिशत अंकों के साथ इंटरमीडिएट की परीक्षा उत्तीर्ण की है। बहुत-बहुत बधाई और शुभकामनाएं बेटा।

पोस्ट में, सिंह ने अपने बेटे के साथ हुई बातचीत का हवाला दिया। उनके बेटे ने उनसे पूछा था कि क्या वह उसके मामूली अंकों के कारण नाराज़ हैं? सिंह ने जवाब दिया नहीं और अपने स्वयं के शैक्षणिक रिकॉर्ड का खुलासा करते हुए बेटे को बताया उन्होंने स्नातक में 52 प्रतिशत, हाई स्कूल में 60 प्रतिशत और इंटरमीडिएट में 75 प्रतिशत अंक प्राप्त किए थे।

उन्होंने पोस्ट में कहाकि हम कहीं से भी, कभी भी जीवन शुरू कर सकते हैं।

ऐसा लगता है 90 प्रतिशत से काम अंक पाना अब असफलता है। परीक्षा एक स्प्रिन्ट दौड़ की प्रतियोगिता हो गई है, जिसमें बच्चों को घोड़े की तरह भागना होता है। उनके अभिभावक चाहते हैं कि उनका घोड़ा सरपट भागे। उसे सरपट भगाने के लिए वे घोड़े की पीठ पर बैठे उन्मादी सवार की तरह चाबुक चलाते हैं। वे भूल जाते हैं कि बच्चे रेस के घोड़े नहीं हैं।

प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी में पिछड़ जाने से अवसाद में आए बच्चे यह लिखते हुए आत्महत्याएं करते हैं कि वे अपने माता-पिता की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पा रहे हैं।

अभिभावकों को यह शिक्षा देनी है कि वे अपने बच्चों के सपनों को पहचानें और उन पर अनावश्यक दबाव न डालें। अगर आप सफल नहीं हो पाए हैं, तो उस सफलता को अपने बच्चों में न खोजें। यह सच है कि बच्चों के लिए उनके अभिभावकों के कई सपने होते हैं। वे अपने बच्चों के ज़रिए अपने सपने पूरे करने ली लालसा रखते हैं। लेकिन उन्हें समझना होगा कि उसके लिए वे अपने बच्चों पर दबाव नहीं डालें। जीवन ज्ञान की नहीं, धैर्य की परीक्षा है। बच्चों का समर्थन किया जाना चाहिए।

परीक्षा में अच्छे नंबर लाने के लिए बच्चों पर अभिभावकों का दबाव एक गंभीर और आम समस्या है, खासकर भारत जैसे देशों में जहाँ शैक्षणिक सफलता को जीवन की सफलता का आधार माना जाता है। इस दबाव की तीव्रता विभिन्न कारणों पर निर्भर करती है, जैसे: कई अभिभावक यह मानते हैं कि अच्छे अंक ही सम्मान, करियर और भविष्य की गारंटी हैं। इस सोच से वे बच्चों पर बहुत अधिक अपेक्षाएं लाद देते हैं। अभिभावकों को डर होता है कि यदि बच्चा अच्छे अंक नहीं लाया तो वह अच्छा भविष्य नहीं बना पाएगा। यह डर बच्चों पर अनावश्यक मानसिक बोझ बन जाता है।

अक्सर बच्चों की तुलना उनके दोस्तों, रिश्तेदारों या भाई-बहनों से की जाती है, जिससे उनका आत्मविश्वास टूटता है और मानसिक दबाव बढ़ता है। अंततः इसके परिणाम बच्चों के मानसिक तनाव में होता है और वे डिप्रेशन के शिकार होते चले जाते हैं। उनका आत्मसम्मान काम होने लगता है। नंबरों को ही सफलता का मानक मान लेने से छात्र अपनी योग्यता को केवल अंकों से तोलने लगते हैं, जो आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास को कमजोर करता है और उन्हें ऐसी आकांक्षा रखने वाले अपने अभिभावकों से दूर कर देती है। वे अपने में सिमट जाते हैं। वे अत्यधिक चिंतित रहने लगते हैं और घबराहट में जीते हैं। कुछ मामलों में उनमें आत्महत्या तक की प्रवृत्ति पनप जाती है जिसके परिणाम हमें यदा-कदा खबरों में मिलते हैं।

कई बार छात्र केवल मार्क्स के आधार पर ऐसे विषय या कॅरियर चुन लेते हैं जिसमें उनकी रुचि नहीं होती, जिससे दीर्घकालिक असंतोष उत्पन्न हो सकता है।

इसका यही समाधान है कि बच्चों को दबाव के बजाय सकारात्मक प्रोत्साहन तथा सहयोग दिया जाए। प्रक्रिया पर ध्यान देना जरूरी है, परिणाम पर नहीं। इसलिए मेहनत की सराहना करें, सिर्फ परिणाम की नहीं। बच्चों से खुली चर्चा करें और बच्चों को अपनी चिंता और डर साझा करने दें। बच्चों को पढ़ाई के साथ-साथ खेल, मनोरंजन और आराम भी जरूरी हैं, उन्हें इनमें संतुलन करना सिखाएं।

प्रतिस्पर्धा तब तक उपयोगी है जब तक वह प्रेरणा देती है, लेकिन जब यह दबाव बन जाती है, तो यह बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य, रचनात्मकता और संपूर्ण विकास के लिए हानिकारक हो सकती है। ज़रूरत इस बात की है कि हम शिक्षा व्यवस्था को इस तरह ढालें कि बच्चों की व्यक्तिगत प्रतिभा, रुचि और मानसिक स्वास्थ्य को भी उतनी ही प्राथमिकता दी जाए जितनी अंकों को दी जाती है।❑

वसंत की जब्ती

वसंत को जब्त कर लिया गया,
वह गीत गाते पक्षियों में बदल गया।

गीत गाते पक्षी पिंजरे में रख दिए गए,
वे कोलाहल में बदल गये।

कोलाहल को खामोश कर दिया गया,
वह दृश्यों में बदल गया।

दृश्य को ढक दिया गया,
वह आंखों में बदल गया।

आंखें, जबरन बंद कर दी गई,
वे सपनों में बदल गईं।

सपनों को नकार दिया गया,
वे नक्शे में बदल गये।

नक्शे नष्ट कर दिए गए,
वे यादों में बदल गए।

यादें मिटा दी गईं,
वे सड़कों में बदल गईं।

सड़कें अवरुद्ध कर दी गईं,
वे पैरों में बदल गईं।

पैर कुचल दिए गए,
वे पंखों में बदल गए।

पंख काट दिए गए,
वे हवा में बदल गए।

हवा, रोक दी गई,
वह तूफान में बदल गई।

तूफान कैद कर लिया गया,
उसने लाखों संतानों को जन्म दे
दिया।

वे संतानें हमारी
अंदर और बाहर आती सांसे हैं -
हमारे नथुनों से अंदर और बाहर की
सांसें -
हमारा वसंत है

(म्यांमार के एक ऐसे कवि की कविता जो अज्ञात रहना चाहता है) ❑

जीवन समाज के हिसाब से क्यों जिया जाय!

अभिभावकों द्वारा बच्चों को परीक्षाओं में ऊंचे अंक लाने की प्रतियोगिता में धकेले जाने के मौजूदा माहौल पर जानी-मानी लेखिका रति सक्सेना की सोशल मीडिया पर टिप्पणी यहां उद्धृत है जिसमें वे जीवन की सीख दे रही हैं। सं.

रति सक्सेना

मैंने पीएचडी के बाद बीएड किया था, क्यों कि केरल में वैदिक संस्कृत का विभाग ही नहीँ था, ऊपर से मैं हिन्दीकारी। तब सोचा कि चलो बीएड ही कर लेते हैं, जिससे कहीं काम करने को मिले।

केरल का सबसे पुराना सरकारी बीएड कालेज था। वहां मैंने जो सीखा, वह था दुनिया की दो पत्तियां भी एक सी नहीं होतीं, इसी तरह दो बच्चे भी एक से नहीं होते, इसलिए तुलना करना सबसे गलत काम है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह कि नम्बरों से बच्चे की स्मरण और लिखने की क्षमता का ही पता चलता है।

समाज में मेरे स्कूल के दिनों में भी तमाम मान्यताएं थीं, जैसे कि साइंस ली है तभी कोई होशियार समझा जाता था। आर्ट वाले को फिस्सड्डी समझा जाता था।

उन दिनों नौवीं में ही साइंस या आर्ट्स ली जाती थी। जब मैं नौवीं में पहुँची, पिता का तबादला चित्तौड़गढ़ में हो चुका था। वहां लड़कियों के लिए एक ही स्कूल था, जिसमें केवल आर्ट्स के नाम पर चार विषय प्रमुख थे, जिनमें से मुझे एक भी पसन्द नहीं था, जैसे नागरिक विज्ञान, होम साइंस और हिन्दी। विज्ञान के लिए लड़कों के स्कूल जाना पड़ता था, जो उन दिनों लड़कियों के लिए जेल था।

मैंने आजादी चुनी, और अपने स्कूल के दिनों को खूब एन्जाय किया, वाद विवाद, स्कूली नाटक, गाइडिंग, जम्बूरी, कुछ नहीं छोड़ा, उसे मैं अपना स्वर्णीम काल समझती हूं। लेकिन मुझे हर बार सुनना पड़ता था, क्या पढ़ाई में कमजोर थीं, जो आर्ट्स ले ली? मुझे समझ भी नहीं आता था कि ये कौन लोग हैं। मेरी सभी बहनों ने विज्ञान लिया, वे सब पढ़ने में होशियार भी रहीं। लेकिन किताबें सिर्फ मेरे पास रहीं, आज तक। तो समाज क्या सोचता है, क्या देखता है अलग चीज है। जिन्दगी जीना अलग।

बेटियों के वक्त समझने में मुझे जरा देर लगी, लेकिन देखा कि आधे आधे नम्बर के लिए बच्चों में कम, लेकिन उनकी मम्मियों में मारकाट शुरु हो जाती है। मेरा विचार था कि बच्चियों को सर्वांगिक शिक्षा दूं मैंने बड़ी को भारत नाट्यम सिखाया, छोटी को कर्णाटक संगीत, दोनों को चित्रकला, फिर छोटी ने बास्केटवाल खेला, बड़ी ने जर्मन भाषा सीखी, यानी कि पढ़ाई के अलावा काफी कुछ ।

जब दूसरी मम्मियां अपने बच्चों की मार्कशीट से फूल से कुप्पा हो कर पूछताछ करतीं तो मैं बात टाल देती, क्योंकि मुझे मालूम था कि अभी बीस में बीस मिल भी गए तो जिन्दगी बहुत अच्छी चलेगी, कोई गारन्टी नहीं है।❑

बुकर पुरस्कार : बानू मुश्ताक़ ने जीतकर रचा इतिहास

❑

शेरिलान मोलान

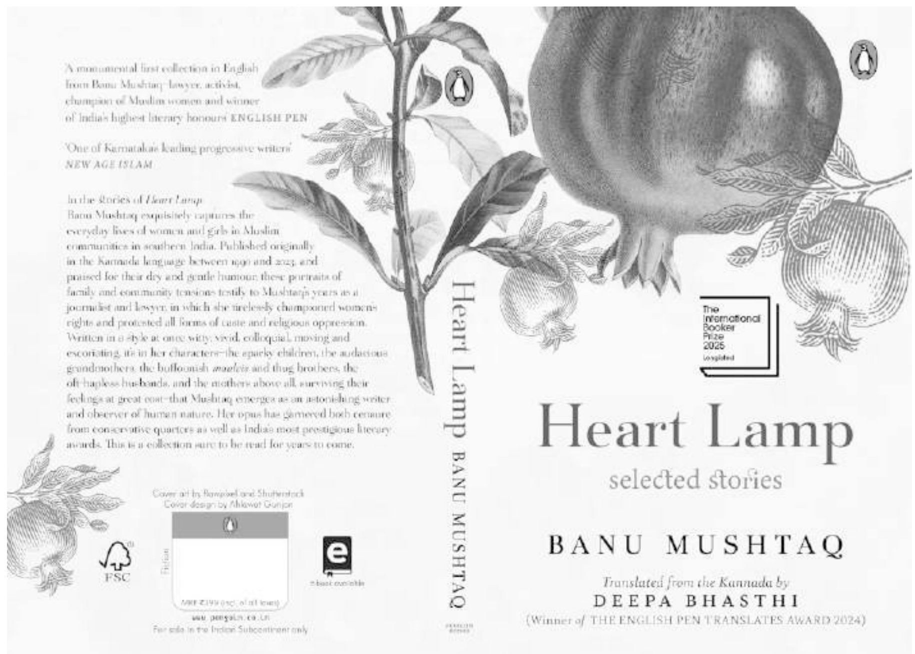

भारतीय लेखिका, वकील और कार्यकर्ता बानू मुश्ताक़ ने लघु कथा संकलन, 'हार्ट लैंप' के लिए अंतरराष्ट्रीय बुकर पुरस्कार जीतकर इतिहास रच दिया है।

कन्नड़ भाषा में लिखी गई यह पहली किताब है जिसे यह प्रतिष्ठित पुरस्कार हासिल हुआ है। 'हार्ट लैंप' की कहानियों का अंग्रेज़ी में अनुवाद दीपा भास्ती ने किया है।

1990 से 2023 के बीच मुश्ताक़ की लिखी 12 लघु कथाओं वाली किताब 'हार्ट' लैंप में, दक्षिण भारत में मुस्लिम महिलाओं की मुश्किलों का बहुत मार्मिक चित्रण किया गया है।

मुश्ताक़ को मिला पुरस्कार बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सिर्फ़ उनके काम को ही रेखांकित नहीं करता बल्कि भारत की संपन्न क्षेत्रीय साहित्यिक परंपरा को भी दर्शाता है।

इससे पहले साल 2022 में गीतांजलि श्री की पुस्तक 'टॉम्ब ऑफ़ सैंड' को ये पुरस्कार मिला था। 'टॉम्ब ऑफ़ सैंड' का हिंदी से अंग्रेज़ी में अनुवाद डेज़ी रॉकवेल ने किया था।

पुस्तक प्रेमियों के बीच बानू मुश्ताक़ की लेखनी चिर-परिचित है, लेकिन इंटरनेशनल बुकर अवार्ड ने उनकी ज़िंदगी और साहित्य को दुनिया के सामने प्रस्तुत किया है।

उनका साहित्य महिलाओं के सामने आने वाली उन चुनौतियों की झलक देता है जो धार्मिक संकीर्णता और पितृसत्तात्मक समाज से पैदा हुई हैं।

यह उनकी अपनी जागरूकता ही है जिसने शायद मुश्ताक़ को बारीक चरित्र और कथानक गढ़ने में मदद की। मुश्ताक़ कर्नाटक के एक छोटे से कस्बे में मुस्लिम इलाके में पली-बढ़ीं और अपने आसपास की अधिकांश लड़कियों की तरह उन्होंने भी स्कूल में उर्दू भाषा में क़ुरान का अध्ययन किया। लेकिन सरकारी कर्मचारी रहे उनके पिता चाहते थे कि बानू मुश्ताक़ आम स्कूल में पढ़ें। इसलिए जब वह आठ साल की थीं, तब उनके पिता ने उनका दाख़िला एक कॉन्वेंट स्कूल में करवाया जहां कन्नड़ भाषा में पढ़ाई होती थी। मुश्ताक़ ने कन्नड़ भाषा में माहिर होने के लिए कड़ी मेहनत की। बाद में यही भाषा उनकी साहित्यिक अभिव्यक्ति की भाषा बन गई।

स्कूल के समय से ही उन्होंने

लिखना शुरू कर दियाथा। जब उनकी सहेलियां शादी करने लगीं तो बानू मुश्ताक़ ने कॉलेज जाने का विकल्प चुना।

मुश्ताक़ का लेखन छपने में सालों लगे और यह तब हुआ जब वह ख़ास तौर पर अपनी ज़िंदगी के सबसे चुनौतीपूर्ण पलों से गुजर रही थीं। 26 साल की उम्र में अपनी पसंद के व्यक्ति से शादी के एक साल बाद उनकी लघु कथा एक स्थानीय मैग्ज़ीन में छपी, लेकिन उनका शुरुआती विवाहित जीवन संघर्षों और कलह वाला रहा। इस बारे में उन्होंने कई बार खुलकर बात की है।

वोग मैग्ज़ीन को दिए एक इंटरव्यू में उन्होंने कहा था, मैं हमेशा से लिखना चाहती थी लेकिन कुछ लिखने को नहीं था। फिर लव मैरिज के बाद अचानक मुझे बुरक़ा पहनने को कहा गया और पूरी ज़िंदगी घरेलू काम में लगाने को कहा गया। 29 साल की उम्र में मैं पोस्टपार्टम डिप्रेशन से पीड़ित मां बन गई।

'द वीक' मैग्ज़ीन को दिए एक अन्य इंटरव्यू में उन्होंने बताया कि किस तरह उनकी ज़िंदगी घर के अंदर बंध कर रह गई थी। इसके बाद, एक चौंकाने वाले विद्रोह ने बानू मुश्ताक़ को मुक्त कर दिया। उन्होंने पत्रिका को बताया, एक बार बहुत निराशा के पलों में मैंने खुद को आग लगाने के लिए अपने

ऊपर पेट्रोल छिड़क लिया था। शुक्र है कि मेरे पति समय रहते भांप गए। उन्होंने मुझे गले लगाया और माचिस दूर फेंक दी। फिर मेरे पांव में बच्चे को रख कर मिन्नत की कि हमें मत छोड़ो।

हार्ट लैंप में उनकी महिला किरदार प्रतिरोध और विद्रोह के इसी जज़्बे को प्रतिबिंबित करती हैं।

'इंडियन एक्सप्रेस' अख़बार में छपे एक रिव्यू के अनुसार, मुख्य धारा के भारतीय साहित्य में, मुस्लिम महिलाओं को अक्सर एक जैसे सपाट रूपकों में ढाल दिया जाता है। मुश्ताक़ ने इसे ख़ारिज किया। उनके किरदार मेहनती हैं, मोलभाव करते हैं और कभी कभी विरोध भी दर्ज करते हैं। ये विरोध वैसा नहीं है जिससे सुर्ख़ियां बनें बल्कि ऐसा है जिससे उनकी ज़िंदगी में फ़र्क पड़े।

मुश्ताक़ ने एक प्रमुख स्थानीय टैबलॉयड में रिपोर्टर के रूप में काम किया और बाद में 'बांदाया आंदोलन' से भी जुड़ीं। ये आंदोलन साहित्य और सक्रियता के माध्यम से सामाजिक और आर्थिक नाइंसाफ़ी को दूर करने को लेकर चलाया जा रहा था। एक दशक तक पत्रकारिता करने के बाद, उन्होंने अपने परिवार की मदद करने के लिए वकालत शुरू की। कई दशकों के अपने शानदार करियर में उनकी अच्छी ख़ासी संख्या में रचनाएं प्रकाशित हुईं हैं। इनमें छह लघु कहानी संग्रह, एक निबंध संग्रह और एक उपन्यास शामिल है।

लेकिन उनकी तीखी लेखनी ने उन्हें नफ़रत के निशाने पर भी ला दिया। 'द हिंदू' अख़बार में दिए एक साक्षात्कार में उन्होंने बताया कि कैसे साल 2000 में उन्हें धमकी भरे फ़ोन

आए थे क्योंकि उन्होंने मस्जिदों में नमाज पढ़ने के महिला अधिकारों के समर्थन में अपने विचार प्रकट किए थे। उनके ख़िलाफ़ फ़तवा जारी किया गया और एक व्यक्ति ने उनपर चाकू से हमला करने की कोशिश की, हालांकि उनके पति ने उसे दबोच लिया। लेकिन इन घटनाओं से मुश्ताक़ डरी नहीं और उन्होंने ईमानदारी से लिखना जारी रखा।

'द वीक' मैग्ज़ीन को उन्होंने बताया था, मैंने हमेशा अंधश्रद्धा वाली धार्मिक व्याख्याओं को चुनौती दी है। ये मुद्दे मेरे लेखन के केंद्र में रहे हैं। समाज बहुत बदल गया है, लेकिन बुनियादी मुद्दे अब भी वही हैं। भले ही संदर्भ बदल रहा हो, लेकिन महिलाओं और हाशिए पर पड़े समुदायों का बुनियादी संघर्ष जारी हैं।

पिछले कुछ सालों में मुश्ताक़ के लेखन को कर्नाटक साहित्य अकादमी पुरस्कार और दाना चिंतामणि अत्तिमाबे पुरस्कार समेत कई प्रतिष्ठित स्थानीय और राष्ट्रीय पुरस्कार मिल चुके हैं।

2024 में, 1990 और 2012 के बीच प्रकाशित मुश्ताक़ की पांच लघु कहानी संग्रहों के अनूदित अंग्रेजी संकलन, 'हसीना एंड अदर स्टोरीज' ने प्रतिष्ठित 'पेन ट्रांसलेशन प्राइज़' भी जीता था।❑

(लेखिका का यह आलेख बीबीसी न्यूज़ से साभार)

भारतीय राज्यशास्त्र में शासक और प्रजा के सम्बन्ध

आईटीएम यूनिवर्सिटी, ग्वालियर डॉ. राममनोहर लोहिया स्मृति-ग्रंथमाला के अंतर्गत महत्वपूर्ण पुस्तकों का सुंदर प्रकाशन करके उच्च शिक्षा के गंभीर संस्थान होने का धर्म निबाह रही है। इसके तहत विविध विधाओं में सृजन करने वाले डॉ. नन्दकिशोर आचार्य की सद्य प्रकाशित तीसरी पुस्तक पर चर्चा। सं.

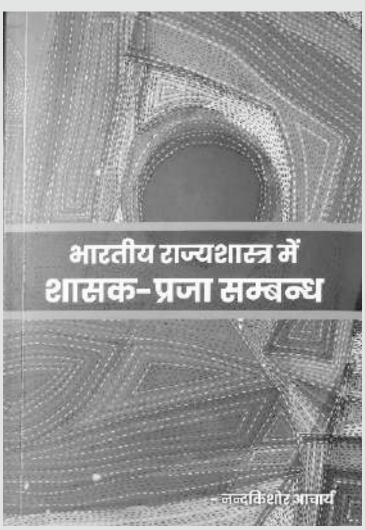

❑

नन्द किशोर आचार्य की नई पुस्तक 'भारतीय राज्यशास्त्र में शासक-प्रजा सम्बन्ध' हमेशा की तरह चीजों को देखने का नया नज़रिया देती है। उनमें एक अकादमिक वैशिष्ट्य है जिसमें वे विषय को उसकी ऐतिहासिक भाव भूमि में समाहित करते हुए उसे समग्रता में प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार वे भारतीय ज्ञान परंपरा को बखूबी वर्तमान में ले आते हैं। उनका लेखन उन सांस्कृतिक और शास्त्रीय संदर्भों से भरा होता है जिन्हें वे अपनी तर्कपूर्ण निजी दृष्टि से देखते हैं। आधुनिक काल की उनकी दृष्टि में महात्मा गांधी, विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण, एम. एन. रॉय तथा राममोहन लोहिया बार-बार उभर कर आते हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ एक प्रकार से शोध प्रबंध जैसा है जिसमें आचार्यजी राजा और प्रजा के संबंधों को टटोलते हुए इस अवधारणा के साथ खड़े हैं कि पुरातन काल से इस भू-भाग में, जो कभी आर्यवृत कहलाया तो कभी हिंदोस्तान के रूप में जाना गया व आज भारत है, वहां राज्य सत्ता कभी तानाशाही, जिसे अंग्रेजी में टोटेलिटेरियन कहते हैं, वाली नहीं रही।

पुस्तक के प्रारंभ में अपने लेखकीय निवेदन में वे कहते हैं कि पिछले कुछ अरसे से भारतीय ज्ञान परंपरा के प्रति अकादमिक आकर्षण कुछ बढ़ा है, इसलिए उन्हें लगा कि हमारी राज्यशास्त्रीय ज्ञान परंपरा में प्रजा की शक्ति और सर्वोपरिता का प्रामाणिक अध्ययन अत्यंत प्रासंगिक और उपयोगी होगा क्योंकि लोकतान्त्रिक व्यवस्थाओं में भी शासन शक्ति में निरंतर वृद्धि होती जा रही है तथा नागरिक, सामान्यतः असहाय महसूस कर रहे हैं। ऐसी स्थिति में, अपनी परंपरा को समझने तथा वास्तविक लोकतंत्र के संपोषण और सुरक्षा के लिए उससे प्रेरणा एवं शक्ति प्राप्त करने में शायद यह अध्ययन कुछ भूमिका निबाह सकेगा।

उनका समस्त प्रबंध विगत में हुए अध्ययनों और उनके लेखकों के निष्कर्षों को समेटे हुए हैं, जिनमें से बहुतों के साथ वे सहमत हैं, तो कुछ से तर्कसम्मत भिन्न मत भी रखते हैं। जैसे वे सहमत हैं कि भारतीय राज्यशासन के पुरातन विचारों में शासक के निर्वाचन अथवा उसके लिए प्रजा की सहमति को अत्यंत आवश्यक माना गया है। वे

पांडुरंग वामन काणे से सहमत हैं कि राजपद के वंशानुगत हो जाने के बाद भी प्रजा की स्वीकृति पाने की परंपरा जाग्रत रही।

अपनी अवधारणा की पुष्टि में वे कहते हैं कि साम्राज्यों के निर्माण के बावजूद भारतीय ग्राम समाज की व्यवस्था प्रकारांतर से गणतांत्रिक ही रही। वे कहते हैं कि आधुनिक भारतीय राजनैतिक चिंतन में प्रजातान्त्रिक प्रवत्तियों का आकर्षण कोई अकस्मात अथवा केवल पश्चिमी प्रजातन्त्र से प्रभावित परिघटना नहीं है। महात्मा गांधी प्रजातन्त्र का उत्कर्ष जिस 'स्वराज' में देखते हैं, वह एक वैदिक अवधारणा है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति स्वशासित है और राज्य ऐसे स्वशासित समाज की राजनैतिक अभिव्यक्ति होने पर ही वास्तविक सार्थकता अर्जित कर सकता है।

लेखक का मानना है कि भारतीय राजनैतिक चिंतन में शासक के अधिकारों की नहीं, बल्कि प्रजा के प्रति उसके कर्तव्यों की केन्द्रीयता रही है। मगर लेखक प्रजा और नागरिक में भेद की तरफ नहीं झांकता है। भारतीय प्रजा को नागरिक का दर्जा संविधान सभा द्वारा 26 नवम्बर 1949 को अपनाये गये तथा 26 जनवरी 1950 को प्रभावी हुए संविधान से मिला जो व्यावहारिक पुरातन भारतीय राज्य व्यवस्था से मुक्त होने की उद्घोषणा थी। संविधान ने पुरातन सामंती धारा में बहती प्रजा को नागरिक की संप्रभुता दी। अनंत काल पुराने भारतीय राज्यशास्त्र के चिंतन में मनुष्यों के बीच समानता की अवधारणा कभी नहीं रही, अवसरों की समानता की बात छोड़ भी दी जाय तो भी। समूचे अध्ययन में आचार्यजी ने राज्यशास्त्र में उस सामंती तत्व को जरा भी नहीं छुआ है जिसकी छाप हर काल में रही।

आचार्यजी इसे भ्रम मानते हैं कि जीवन के सभी आयाम राज्य के नियंत्रण में आ जाने के परिणामस्वरूप भारतीय राज्यतंत्र टोटेलिटेरियन था तथा शासक व्यवहारतः एक अधिनायक होते थे। उनकी स्थापना है कि भारतीय चिंतन परंपरा में राज्य के कर्तव्यों का दायरा सर्वतोमुखी होने के बावजूद शासक की स्थिति किसी अधिनायक की नहीं मानी गयी और न ही स्वयं राज्य संस्था को सर्वसत्तासंपन्न माना गया क्योंकि उसके लिए अपने कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए न केवल धर्मशास्त्र बल्कि स्थानीय रिवाजों और परंपराओं का भी पालन करना अनिवार्य माना गया है। लेखक यह भी मानता है कि इन कर्तव्यों का पालन करने के लिए शासक को स्वेच्छाचारी होने की छूट नहीं दी गयी है। धर्म का परिपालन राज्य का कर्तव्य है और शासक उसका प्रमुख कार्याधिकारी है वास्तविक संप्रभुता धर्म की थी जो, व्यवहारतः, अनेक केंद्रों में अधिवसित हो जाती थी।

लेखक इस बात को रेखांकित करता है कि शासक को प्रजापीड़न से रोकने के लिए भारतीय राज्य शस्त्र सर्वप्रथम तो नैतिक-धार्मिक दबाव का उल्लेख करता है। राज्यशास्त्र से संबंधित सभी ग्रंथों में शासक को यह परामर्श दिया गया है कि उसे किसी भी स्थिति में राजधर्म का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। धर्म – आधुनिक शब्दावली में संविधान – किसी भी राज्य अथवा शासन से श्रेष्ठ है। तब के धर्म को आधुनिक शब्दावली में संविधान बताते हुए आचार्य जी इस पर नहीं जाते कि आधुनिक संविधान राज्य से दायित्वों की पालना कराने के लिए स्वतंत्र न्यायपालिका की व्यवस्था करता है जो तब अनुपस्थित थी। मगर उनका तर्क है कि शास्त्र की व्याख्या का अधिकार धर्मज्ञों का था, जो अपनी विद्वत और चरित्र के कारण समाज में प्रतिष्ठित होते थे। समाज जो खुद वर्ण व्यवस्था वाले पदानुक्रम को मान्यता देता हो और उस मान्यता को धर्मज्ञ स्वीकृति देते हों वह गणतंत्र भद्रजनों का ही हो सकता था, इस पर उस पर लेखक के निष्कर्षों पर सवाल उठ सकते हैं।

पुस्तक के अंतिम अध्याय 'प्रतिरोध का अधिकार' में लेखक यह जरूर कहता है कि यह समस्या फिर भी बनी रहती है कि यदि शासक धार्मिक दबाव की चिंता ना करते हुए स्वेच्छाचरिता और अन्याय करे तो प्रजा के पास क्या संवैधानिक विकल्प है। यदि हम आधुनिक अर्थों में संविधान की बात करें तो निश्चय ही ऐसी कोई व्यवस्था हमें नहीं मिलती।

अकादमिक अध्ययन होने के कारण भारतीय चिंतन में क्या रहा और व्यावहारिक धरातल पर उसका उलट क्यों रहा इस पर लेखक का सरोकार नहीं है। हालांकि फ्रांसीसी क्रांति के बाद पश्चिम से आई लोकतंत्र की अवधारणा के सामने पुरातन भारतीय राज्य व्यवस्था को उससे भी पुरानी बताते हुए उसे ढाई से पाँच हजार वर्ष पहले वैदिक काल तक ले जाने का उन विदेशी विद्वानों का शगल रहा जिनका अपने से इतर एक नई सभ्यता से सामना हुआ। भारतीय जनमानस को अपने विगत का महिमामंडन हमेशा लुभाता रहा है।❑

–राजेन्द्र बोड़ा

रोशन विरासत: 'चिराग़ – ए – दैर'

साम्प्रदायिकता के धुंधलके में ओझल होती साझा विरासतें

❑

मिर्ज़ा ग़ालिब की शायरी का मुरीद कौन नहीं होगा। मगर कितने लोगों को जानकारी है कि इस महान मुस्लिम शायर ने हिंदुओं के तीर्थ स्थल बनारस – काशी – की शान में पूरी एक मसनवी (ग्रंथ) लिख दी थी। अध्येता डॉ. कन्हैयालाल अपने आलेख में ग़ालिब की इसी अनोखी मसनवी का नई पीढ़ी को परिचय करा रहे है, जो हिंदुस्तान की साझा संस्कृति का खूबसूरत उदाहरण है। सं.

❑

डॉ. कन्हैयालाल खाँड़पकर

अस्मद् कालीन भारत में धर्म (मज़हब) और राजनीति के घालमेल ने, मज़हब की आड़ में सियासत के घातक खेल ने हमारी विवेक दृष्टि को इस कदर धुंधला कर दिया है कि हम इस प्राचीन और विशाल राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर के सही अर्थ एवं सही स्वरूप को ही प्रायः विस्मृत कर बैठते हैं। मज़हब के विध्वंसक रूप के लिये ही फ़िराक़ ने कहा था – 'तुझे मज़हब मिटाना होगा रू-ए-हस्ती से, तेरे हाथों बहुत तौहीने आदम हुई जाती है'।

अनेक धाराओं से समृद्ध हमारी सांस्कृतिक धरोहर की प्रकृति से अनभिज्ञता ने ही संकीर्णता को हवा दी है। फलतः बक़ौल वसीम बरेलवी हमारे जहन में यह बात नहीं आती कि, 'तेरे चिराग़ अलग हों मेरे चिराग़ अलग, उजाला तो मगर फिर भी जुड़ा नहीं होता'।

इस कारण हिन्दू-मुसलमानों को करीब ला सकने वाली हर बात की अनदेखी 'देशानुराग' व 'दीन की खिदमत' के पर्याय बन गये हैं। सांप्रदायिकता के धुंधलके में हमारी साझा विरासत की अमूल्य चीजें ओझल होती जा रही है। वह विरासत जो अमीर खुसरो, मलिक मोहम्मद जायसी, रसखान, अब्दुल रहीम खानखाना से होती हुई मिर्ज़ा ग़ालिब और नज़ीर अकबराबादी के माध्यम से हम तक पहुंची।

सच्चा साहित्यकार मज़हब और जात-पांत की घेराबंदी से परे मानवता का पुजारी होता है। संकीर्णता

उसे रास नहीं आती। यही कारण है कि मिर्ज़ा ग़ालिब जैसा उर्दू का अजीम शाइर हिंदुओं के सबसे बड़े तीर्थ काशी (बनारस) के सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर उसका स्तवन करते हुए 108 शेरों की एक मसनवी की रचना फ़ारसी में करता है। कितने लोग इस हक़ीक़त से वाक़िफ हैं? इस आलेख में ग़ालिब द्वारा रचित मसनवी 'चिराग़-ए-दैर' के चुनिंदा अशरार इस मकसद से प्रस्तुत किये जा रहे हैं कि धार्मिक उन्माद की धुंध से पड़े हमारी रोशन विरासत उजागर हो सके।

चिराग़-ए-दैर' की पृष्ठभूमि

अंग्रेजी हुकूमत के डैरान मिर्ज़ा ग़ालिब को अपनी पेंशन के सिलसिले में गवर्नर जनरल से मिलने कलकत्ते (आज का कोलकाता) जाना पड़ा, अनेक पड़ावों को पार करते हुए वे 27 नवंबर 1827 को इलाहाबाद (आज प्रयागराज) पहुंचे और दूसरे दिन सवेरे बनारस के लिये रवाना हो गये। अपने घाटों व सुहानी सुबह के लिये विख्यात यह शहर उन्हें इतना भाय गया कि लगभग एक महीने तक उन्होंने वहीं मुकाम किया। 29 दिसंबर 1827 को वे बनारस से कलकत्ता के लिये रवाना हुए।

बनारस की मनमोहक छवि से ग़ालिब इतने प्रभावित हुए कि वहां मुकाम के दौरान उन्होंने अपनी मसनवी 'चिराग़-ए-दैर' (मंदिर की ज्योति) की रचना की, जो उनकी उत्कृष्ट मसनवियों में गिनी जाती है। इस मसनवी की एक विशेषता यह भी है कि इसमें 108 शेर हैं। ज्ञातव्य है कि माला में भी इतने ही मनके होते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्हें भारतीय रीति-रिवाजों की समुचित जानकारी थी। उन्हें यह भी ज्ञात था कि काशी हिंदुओं का सबसे बड़ा तीर्थस्थान है।

. गालिब ने जब मसनवी की रचना की, उनकी उम्र तरुणाई के मध्यान्ह में अर्थात तीस बरस की थी और वे सरज़मी हिंदोस्तां की परंपरा को आत्मसात् कर चुके थे। इस मसनवी से यह भी पता चलता है कि ग़ालिब के काव्य संसार में निहित उपमा सौन्दर्य कैसा अनूठा व अनुपम है। यहां यह बात विचारणीय है कि एक बड़ा कवि देश, धर्म और जाति से ऊपर उठ कर सोचता है। वह हर धर्म और धर्मस्थल को सम्मान की दृष्टि से देखता है। उसके पास ओढ़ी हुई नहीं वरन् अनुभूत सर्वधर्म समभाव की पूंजी होती है।

इस संदर्भ में यह बात विशेष

रूप से ध्यान देने योग्य है कि आखिर ग़ालिब पर कोई राजनीतिक दबाव तो था नहीं कि वे बनारस (काशी) के अस्तित्व और महत्व को संवेदनात्मक स्तर पर अनुभव कर अभिव्यक्त करें। आध्यात्मिकता और सांसारिकता की सीमारेखा पर ही कहीं कविता का निवास होता है। काम से काम ग़ालिब की इस मसनवी से तो यही परिलक्षित होता है। क्या इसके बाद भी ग़ालिब को भारतीय कवि होने या भारतीयता का प्रमाणपत्र किसी राजनेता से प्राप्त करना होगा? सांप्रदायिकता से विषाक्त हो चुके आज के सियासी महौल को देख कर डॉ. के. एम. मुंशी की इस उक्ति का मर्म समझ में आ जाता है कि आज के भारत में वस्तुतः अल्पसंख्यक तो स्वयं को भारतीय मानने वाले लोग हैं।

. गालिब एक मुसलमान के रूप में नहीं वरन् एक भारतीय के रूप में भाव–विभोर होकर काशी का गुणगान करते हैं। यह मसनवी काशी के लिये उपासना भाव से ओत–प्रोत है। जाहीर है, जब आचरण के स्तर पर भारत की मिट्टी पानी से जुड़ाव नहीं होता; क़ौमी एकता की बातें महज़ लफ़्फ़ाज़ी बन कर रह जाएगी और तथाकथित धर्म निरपेक्षता सत्ता शिखर पर पहुँचने की सीढ़ी मात्र। आवश्यकता है अज़ीम शाइर ग़ालिब की भारतीयता की चेतना को समझने की।

प्रस्तुत है बनारस की महिमा को उजागर करते 'चिराग़–ए–दैर' के चांद शेर, जो व्याख्या के मोहताज नहीं हैं।

फारसी में कहे गये शेर देवनागरी लिपि में हिन्दी भावार्थ सहित –

तआली अल्लाह बनारस चश्मे बद दूर, बहिश्ते खुर्रमों फिर्दोसे मामूर अर्थात सुब्हान अल्लाह! बनारस को ईश्वर बुरी नज़र से बचाये। यह एक समृद्ध और भरपूर स्वर्ग है।

बनारस रा कसे गुफ़्ता कि चीनस्त, हनोज़ अज़ गंग चीनश बर जबीनस्त अर्थात किसी ने बनारस के सौन्दर्य के तुलना चीन से करते हुए कह दिया कि बनारस चीन है। यह बात बनारस को इतनी बुरी लगी कि उसके माथे पर बाल पढ़ गया अर्थात् गंगा की धारा बनारस के माथे पर पड़ा वह बल है, जो चीन से अपनी सुन्दरता की समानता सुन कर पड़ गया था।

तनासुख़ मश्रबां चूं लब कुशायन्द, बेकशे खेश काशे रास्तायन्द माने आवागमन में विश्वास करने वाले जब होंठ खोलते हैं तो अपनी धार्मिक मान्यता के अनुसार (इसकी) प्रशंसा इस करते हैं–

यह मसनवी काशी के लिये उपासना भाव से ओत–प्रोत है। जाहीर है, जब आचरण के स्तर पर भारत की मिट्टी पानी से जुड़ाव नहीं होता; क़ौमी एकता की बातें महज़ लफ़्फ़ाज़ी बन कर रह जाएगी और तथाकथित धर्म निरपेक्षता सत्ता शिखर पर पहुँचने की सीढ़ी मात्र। आवश्यकता है अज़ीम शाइर ग़ालिब की भारतीयता की चेतना को समझने की।

कि हरकस कान्दरां गुलशन बमीरद, दिगर पैवन्दे जिस्माने नगीरद मतलब कि जो व्यक्ति इस उपवन में देह त्यागता है, वह आवागमन के चक्र से छूट जाता है। अर्थात मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

शुगुफ़्ते नीस्त अज़ अबो–हवायश, कि तन्हा जां शवद अन्दर फ़ज़ायश अर्थात इसकी जलवायु से उत्तम कोई जलवायु नहीं है। अतः आश्चर्य नहीं कि इसके वायुमंडल में केवल आत्माओं का ही निवास हो। गंदगी तो देह का धर्म है न।

इबादतखाना–ए–नाक़ूसियांस्त, हनाना काबा–ए–हिन्दोस्तास्त माने यह अर्थात बनारस शंख फूंकने वालों का पूजास्थल है। यह निश्चित ही हिंदुस्तान का काबा है।

. जताबे–जल्वा हा बेताब गश्ता, गुहर हा दर सदफ़ हा आबगश्त मतलब कि यहां (बनारस) की सुन्दरियों की छवि देखकर वे इस कदर उत्कंठित हो गये हैं कि सीप में पड़े हुए मोती मोती पानी–पानी हो गये हैं।

बुलन्द उफ़्तादः तम्कीने बनारस, बुवद बर ओज ओ अंदेशा नारस अर्थात बनारस की श्रेष्ठता और प्रतिष्ठा इतनी ऊंची है कि कल्पना की भी उड़ान उसकी चोटी तक पहुंचने में असमर्थ है।

मगर गोई बनारस शाहीदे हस्त, ज गंगश सुब्हो–शाम आईनः दर दस्त माने कि बनारस एक ऐसी प्रेयसी है, जो सुबह और शाम स्वयं के श्रंगार के लिये गंगारूपी दर्पण हाथ में रखती है।

(सी–2, 'रत्न स्मृति', पंचवटी कॉलोनी, रातानाडा, जोधपुर 342001) ❑

बहुत धीमी है इंसानी दिमाग की डेटा प्रोसेसिंग

❑

इंसान का तेज दिमाग कहने को ही बहुत तेज है. एक ताजा शोध बताता है कि उसकी स्पीड सिर्फ 10 बिट्स प्रति सेकेंड है, जो कंप्यूटर या स्मार्ट फोन के सामने कुछ भी नहीं है. फिर भी, इंसानी दिमाग बेहतर क्यों है? सं.

❑

विवेक कुमार

ऐसा कहा जाता है कि इंसान के दिमाग में एक बार में दर्जनों बातें एक साथ चल रही होती हैं। इससे इंसान का व्यवहार बहुत तेज और असरदार दिखता है। की-बोर्ड पर टाइपिंग हो या बातचीत करना, ऐसा लगता है जैसे सब कुछ बिजली की गति से हो रहा है। लेकिन रिसर्च से पता चला है कि हमारा दिमाग हर सेकंड सिर्फ 10 बिट्स की रफ्तार से जानकारी प्रोसेस करता है।

अमेरिका के कैलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी के जू जेंग और मार्कुस माइस्टर ने इस पर गहराई से अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि हमारे दिमाग की धीमी गति, उसकी संरचना और काम करने के तरीके को समझने के लिए नए सवाल खड़े करती है।

'न्यूरोन्स' पत्रिका में प्रकाशित एक शोध में जेंग और माइस्टर ने बताया है कि इंसानी इंद्रियां हर वक्त भारी मात्रा में डेटा जमा करती हैं। हमारी आंखें, कान और त्वचा से मिली जानकारी हर सेकंड लगभग एक अरब बिट्स की दर से हमारे दिमाग तक पहुंचती है। लेकिन इस जानकारी को समझने और फैसले में बदलने में दिमाग को बहुत ज्यादा वक्त लगता है।

यह धीमी गति तब भी रहती है जब हम तेज-तर्रार काम कर रहे हों, जैसे वीडियो गेम खेलना या याददाश्त से जुड़े कठिन काम करना। हर परिस्थिति में दिमाग की प्रोसेसिंग स्पीड 10 बिट्स प्रति सेकेंड के करीब रहती है।

जेंग और माइस्टर के अनुसार, दिमाग दो अलग-अलग तरीकों से काम करता है. एक हिस्सा है, बाहरी दिमाग जो तेज और बड़े पैमाने पर डेटा प्रोसेस करता है। दूसरा हिस्सा भीतरी दिमाग है, जो डेटा को छांटकर, जरूरी हिस्सों पर ध्यान केंद्रित करता है।

शोधपत्र में वैज्ञानिक रेटिना की मिसाल देते हैं। हमारी आंखें शुरुआती स्तर पर बहुत सारा डेटा प्रोसेस करती हैं। लेकिन बाद में, यह डेटा धीरे-धीरे छांटा जाता है, ताकि सिर्फ जरूरी जानकारी ही हमारे विचारों और फैसलों का हिस्सा बने। इसके साथ ही दिमाग अपनी सफाई करता रहता है, ताकि गैरजरूरी डेटा हटता रहे।

रिसर्चर कहते हैं कि तेज प्रोसेसिंग की गलतफहमी कई बार हमारे दैनिक जीवन में देखने को मिलती है। खेल और गेमिंग से जुड़े उदाहरण इसे ज्यादा स्पष्ट कर सकते हैं। वीडियो गेम टेट्रिस खेलने वाले प्रोफेशनल खिलाड़ी हर मिनट में 200 बार ब्लॉक को घुमाते

या गिराते हैं. लेकिन इनमें भी असल फैसले वही 10 बिट्स प्रति सेंकेंड की दर से लिए जाते हैं।

स्टारक्राफ्ट वीडियो गेम खेलते खिलाड़ियों को देखने से लगता है कि वे बिजली की रफ्तार से कीबोर्ड पर उंगलियां चला रहे हैं। लेकिन शोध दिखाता है कि केवल कुछ ही मूव गेम का परिणाम तय करते हैं।

स्पीडक्यूबिंग एक और दिलचस्प उदाहरण है। कुछ लोग तो आंख बंद करके कुछ सेकेंड्स में रुबरिक क्यूब को हल कर देते हैं। लेकिन जेंग और माइस्टर ने शोध में पाया कि उनकी प्रोसेसिंग स्पीड भी वही 10 बिट्स प्रति सेकेंड होती है।

इस शोध में वैज्ञानिकों ने ट्वेंटी क्वेश्चन गेम का उदाहरण दिया है। इसमें एक व्यक्ति हां/ना के सवाल पूछकर किसी चीज का अंदाजा लगाता है। इस बारे में लेखक लिखते हैं, अगर सवाल सही तरीके से डिजाइन किए गए हैं, तो हर सवाल से 1 बिट जानकारी मिलती है। अगर अनुमान सही है, तो यह दिखाता है कि कुछ सेकंड में दिमाग 20 बिट्स जानकारी प्रोसेस करता है। इसका मतलब है कि सोचने की रफ्तार, बिना किसी बाहरी रुकावट के, 10 बिट्स प्रति सेकेंड या उससे कम होती है।

यह उदाहरण दिखाता है कि चाहे कल्पना हो, कुछ काम करना हो, या किसी चीज को याद करना, हर मामले में दिमाग की प्रोसेसिंग क्षमता लगभग समान रहती है।

यह सवाल अब भी बड़ा रहस्य है। हमारे दिमाग में अरबों न्यूरॉन (तंत्रिका कोशिकाएं) होते हैं, जो भारी मात्रा में डेटा प्रोसेस कर सकते हैं। फिर भी, हमारे फैसले लेने की गति इतनी कम क्यों है? यह बात और अहम हो जाती है, जबकि अब ऐसे तेज सुपर कंप्यूटर बना लिए गए हैं, जो हजारों या लाखों बिट्स प्रति सेकेंड की रफ्तार से डेटा प्रोसेस कर सकते हैं।

शोधकर्ता कहते हैं कि एक संभावित कारण यह हो सकता है कि दिमाग की आंतरिक संरचना लचीली और सटीक फैसले लेने पर जोर देती है। कई वैज्ञानिकों का मानना है कि हमारी इंद्रियां समानांतर तरीके से डेटा प्रोसेस करती हैं. लेकिन हमारे विचार और फैसले एक क्रम में होते हैं।

यह शोध ब्रेन-कंप्यूटर इंटरफेस (बीसीआई) तकनीकों के लिए बेहद महत्वपूर्ण साबित हो सकता है। बीसीआई का मकसद है कि दिमाग से सीधे कंप्यूटर या डिवाइस को कंट्रोल किया जाए।

दिमाग की प्रोसेसिंग स्पीड की तुलना आधुनिक तकनीक से करें तो यह बेहद धीमी लगती है। एक स्मार्टफोन प्रति सेकेंड कई गिगाबिट्स प्रोसेस कर सकता है, या एक आधुनिक कंप्यूटर की प्रोसेसिंग क्षमता सैकड़ों गीगाबाइट्स प्रति सेकंड है। इन दोनों की तुलना में इंसानी दिमाग की स्पीड कछुए जैसी लगती है। यह अंतर दिखाता है कि इंसानी दिमाग डेटा प्रोसेसिंग में कितना प्रभावी और अर्थपूर्ण छंटाई करता है। असल फर्क यह है कि मशीनें हर जानकारी को समान रूप से प्रोसेस करती हैं।

यही वजह है कि अभी तक कोई भी तकनीक इंसान के बोलने या टाइपिंग जैसी सटीकता और स्पीड को पीछे नहीं छोड़ पाई है। इसका कारण यही हो सकता है कि दिमाग की 10 बिट्स प्रति सेकेंड्स की लिमिट हर प्रकार की तकनीक के लिए एक बाधा है।

दिमाग की इस धीमी प्रोसेसिंग के पीछे का कारण अब भी एक पहेली है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि यह हमारी विकास प्रक्रिया का नतीजा है। कुछ का कहना है कि हमारे अंदर ऐसी प्रक्रियाएं हो सकती हैं जो तेज गति से काम करती हैं, लेकिन हमें उनका पता नहीं चलता।

भविष्य में शोध का केंद्र इन अनदेखी प्रक्रियाओं को समझने पर हो सकता है। यह भी देखा जा सकता है कि अन्य जीव-जंतु कैसे डेटा प्रोसेस करते हैं।❑

जीवन में त्याग का महत्त्व

❑

महात्मा गांधी कहा करते थे कि भोग की बढ़ती प्रवृत्ति ही प्रकृति का दोहन करवाती है इसलिए हमें इससे बचना चाहिए और जल, जमीन और भोजन जैसी अनिवार्य सुविधाओं के लिए हमें प्रकृति का अपनी उचित जरूरतों के नुरूप उपयोग करना चाहिए। ऐसा ही भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी रहे लेखक अपने सफल जीवन के अनुभवों के आधार पर बता रहे हैं। सं.

❑

रणजीत सिंह कूमट

जैन धर्म के दशवैकालिक सूत्र का पहला सूत्र है 'धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो' अर्थात मंगल धर्म अहिंसा, संयम और तप में निहित है। संयम का अर्थ होता है अपनी इच्छाओं पर लगाम और तप का अर्थ होता है त्याग।

अधिकतर यही होता है कि यदि हमारे पास पैसों और साधनों की कमी न हो तो वस्तुओं की खरीद और उपभोग में कोई सीमा ही नही रहती है। उपभोग की वस्तुओं का घर में अम्बार लग जाता है। परन्तु बुद्धिमानी इसमें है कि जितनी भूख हो उतना खायें और जितनी आवश्यकता हो उतना ही खरीदें और संग्रह करें। अनावश्यक व्यय से साधनों का अपव्यय तो होता ही है जिन लोगों को भोजन, कपड़ों या वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे वंचित रह जाते हैं। स्वास्थ्य व सामाजिक संतुलन के लिए भोग-उपभोग में संयम होना आवश्यक है। इसीलिए संयम को धर्म का मार्ग माना है। वस्तुएं या धन संग्रह पर सीमा लगाने के लिए भगवान महावीर ने अपरिग्रह व्रत का विधान किया। धन-धान्य, सोना चांदी, ज़मीन-मकान, जानवर आदि रखने पर एक निश्चित सीमा लगाने का उपदेश दिया और इसके उपरान्त जो भी प्राप्त हो उसका त्याग कर दान देने और दूसरों की सहायता में लगाने का उपदेश दिया।

जैन धर्म में संग्रह को दुःख का मूल कारण बताया है। संग्रह के लिए धनार्जन करना होता है और धनार्जन के लिए कठिन परिश्रम करना होता है। जितना अधिक संग्रह उतना ही अधिक परिश्रम। धन कमाने में कष्ट होता है इसलिए कहा गया अर्जन में कष्ट। अर्जन के बाद संग्रहित धन या वस्तु का संरक्षण भी करना होता है और इस संरक्षण के लिए भी कष्ट उठाने पड़ते हैं। अब यदि अर्जित धन कोई चुरा ले, या खो जाए या घाटा लग जाय तो अतीव दुःख होता है। अतः धन का अर्जन, संरक्षण और हानि तीनों ही दुःख देने वाले हैं।

जहां संग्रह स्वयं के लिए दुखदायी है वही समाज के लिए भी दुःखदायी है। साधन तो सीमित होते हैं और यदि एक या कुछ व्यक्ति अधिक संग्रह करते हैं तो शेष लोग उन साधनों से वंचित हो जाते हैं। जहां ज्यादा अरबपति या खरबपति हैं वहीं करोड़ों गरीब और वंचित होते हैं और यही सामाजिक संघर्ष का कारण बनता है। साधनों के विषम वितरण के कारण समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धांतों का विकास हुआ। रूस और चीन में साम्यवाद की स्थापना के लिए खूनी

क्रांतियां हुई। महावीर ने सामाजिक संघर्ष से बचने के लिए अपरिग्रह के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। संग्रह पर सीमा लगाने के बाद अर्जन पर भी सीमा लगेगी साथ ही संगृहीत धन का सदुपयोग जनहित में कर वंचित लोगों को सुविधा प्रदान की जाएगी। यह सद्भाव और सामंजस्य स्थापित करेगा। जो कोई भी अपने धन का सदुपयोग जनहित में करेगा वह दान या उपकार की भावना से न कर कर्त्तव्य भाव से करेगा और तब ही वह त्याग या तप की श्रेणी में आएगा। दान देकर उसका ढिंढोरा पीटना, बोर्ड पर नाम लिखवाना त्याग की श्रेणी में नहीं आता। त्याग तब है जब, जैसा ईसा मसीह ने कहा दायें हाथ को पता न चले कि बाएं हाथ ने कुछ दान किया है।

जिनके पास अधिक धन हो जाता है वे दिखावा करने और फिजूलखर्च करते हैं। शादी, सामाजिक व धार्मिक समारोहों में धन खर्च कर अपनी शान दिखाने में गर्व महसूस होता है मगर उसी वक्त कोई भूखा पैसे मांगें तो दुत्कार दिया जाता है। लोग कपड़ों, फैशन आदि पर अनाप-शनाप खर्च करते हैं पर दान के नाम पर देने में आनाकानी करते हैं।

किन्तु अब विश्व के बड़े धनपतियों ने दान की नई परम्परा चालू कर सीख दी हैं कि देने में जो सुख है वह लेने और संग्रह में नहीं है। किसी जरूरतमंद की जरुरत पूरी करने पर जो सुख मिलेगा वह अनिवर्चनीय है। इसलिए त्याग में सुख है और संग्रह में दुःख है।

इसी तरह भोजन में संयम रखें तो स्वास्थ्य भी ठीक रहता है। अधिकांश बीमारियां भोजन में संयम न होने से ही होती हैं। अहिंसा से तो हम जीवों की रक्षा करते हैं पर संयम और तप से भी जीवों की रक्षा कर सकते हैं। अतः जीवन का सार है धर्म का पालन करना। धर्म है अहिंसा, संयम और तप। ❑

भारत की जीवन प्रत्याशा में गिरावट

50 वर्षों में पहली बार, भारत में जन्म के समय जीवन प्रत्याशा में गिरावट आई है।

जीवन प्रत्याशा 2016-2020 में 70 वर्ष थी जिससे घटकर 2017-2021 के दौरान वह 69.8 वर्ष हो गई। यह उलटफेर 2020 और 2021 में कोविड-19 महामारी के दौरान हुई बड़ी संख्या में मौतों के साथ मेल खाता है, जिसने मृत्यु दर में तेज वृद्धि की और दशकों से चली आ रही स्थिर सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रगति को बाधित किया।

इन अनुमानों के अनुसार 21 बड़े राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में से 17 में जीवन प्रत्याशा में गिरावट देखी गई। राजस्थान और ओडिसा में कोई बदलाव नहीं हुआ और केवल दो – असम और उत्तर प्रदेश – में सुधार दिखा।

जन्म के समय जीवन प्रत्याशा एक व्यक्ति के जीने की औसत संख्या को दर्शाती है, यह मानते हुए कि वर्तमान मृत्यु दर उनके पूरे जीवनकाल में स्थिर रहती है।

जीवन प्रत्याशा अनुमानों का प्राथमिक स्रोत नमूना पंजीकरण प्रणाली (एसआरएस) है, जो प्रजनन और मृत्यु दर संकेतकों के अनुमान प्रदान करने के लिए डिज़ाइन किया गया एक बड़े पैमाने का जनसांख्यिकीय सर्वेक्षण है।

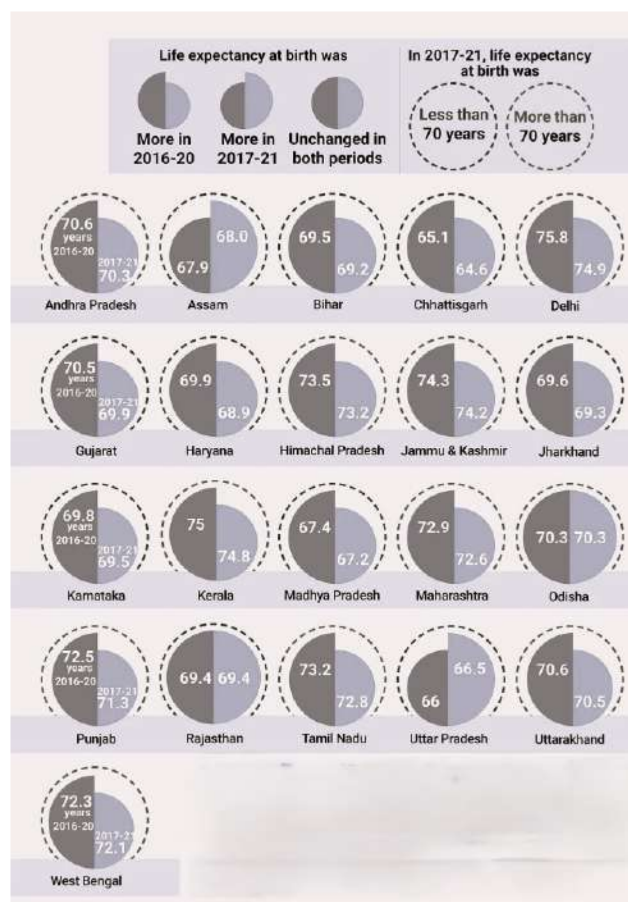

दुनिया के सबसे बड़े प्रदूषक पर्यावरणीय क्षति से सबसे कम प्रभावित

कम्युनिकेशंस अर्थ एंड एनवायरनमेंट में प्रकाशित एक नए अध्ययन के अनुसार, वैश्विक पर्यावरणीय क्षति में सबसे अधिक योगदान देने वाले देश, इसके परिणामों से भी सबसे अधिक सुरक्षित हैं, जबकि सबसे कम जिम्मेदार देश जलवायु परिवर्तन और बढ़ते संघर्ष जोखिमों से असंगत खतरों का सामना कर रहे हैं।

यह विरोधाभासी संबंध पर्यावरणीय स्थिरता और शांति के बारे में पारंपरिक सोच को चुनौती देता है, वैश्विक असमानता के एक परेशान करने वाले पैटर्न को उजागर करता है जो मुख्य रूप से ग्लोबल साउथ के देशों को नुकसान पहुंचाता है। निष्कर्ष बताते हैं कि जैसे-जैसे जलवायु संकट बढ़ता है, नुकसान पहुंचाने वालों और इससे पीड़ित लोगों के बीच की खाई बढ़ती जाती है।

इस शोध ने पिछली धारणाओं को पलट दिया है कि पारिस्थितिक स्थिरता और शांति स्वाभाविक रूप से साथ-साथ चलते हैं। इसके बजाय, 2010 से 2022 तक के डेटा का विश्लेषण करने के बाद, शोधकर्ताओं ने पाया कि यह संबंध वास्तव में उलटा है – जिन देशों में शांति का उच्च स्तर है, उनका पर्यावरण रिकॉर्ड आमतौर पर खराब होता है। अध्ययन से पता चला है कि शांति सूचकांकों पर उच्च स्कोर करने वाले कई धनी राष्ट्र एक साथ पर्यावरणीय रूप से सबसे कम टिकाऊ देशों में से हैं।

यह विरोधाभास कैसे मौजूद हो सकता है? इसका उत्तर आंशिक रूप से इस बात में निहित है कि पारंपरिक रूप से स्थिरता और शांति को कैसे मापा जाता है।

पिछले अध्ययनों में पारंपरिक मेट्रिक्स पर भरोसा किया गया था जो अमीर देशों में स्थिरता और शांति दोनों को ज़्यादा आंकते हैं। ये उपाय अक्सर उपभोग पैटर्न के पूरे पर्यावरणीय प्रभाव को ध्यान में रखने में विफल रहते हैं और इस बात को नज़रअंदाज़ कर देते हैं कि कैसे कुछ शांतिपूर्ण देश अन्य जगहों पर युद्धों में भाग लेकर संघर्ष को बाहरी बना सकते हैं।

नए अध्ययन में प्रति व्यक्ति कार्बन डाइऑक्साइड उत्सर्जन, कुल पारिस्थितिक पदचि (जैविक रूप से उत्पादक भूमि और उपयोग किए गए पानी को मापना), भौतिक पदचि (समग्र संसाधन खपत पर नज़र रखना) तथा पर्यावरणीय जोखिमों के प्रति संवेदनशीलता जैसे अधिक समग्र उपायों का उपयोग किया गया हैं।
जब इन व्यापक मापदंडों को लागू किया गया, तो एक परेशान करने वाला पैटर्न सामने आया: सबसे कम उत्सर्जन और संसाधन खपत वाले देश आमतौर पर जलवायु जोखिमों के प्रति अधिक संवेदनशील थे और उनमें आंतरिक संघर्ष की दर अधिक थी।

पर्यावरणीय जोखिमों और संघर्ष के बीच संबंध अच्छी तरह से स्थापित है। संघर्ष अक्सर पर्यावरणीय गिरावट की ओर ले जाता है और संसाधनों को कम करता है; और जलवायु परिवर्तन या संसाधनों की कमी जैसे पर्यावरणीय जोखिम लोगों को विस्थापित करके या सीमित संसाधनों पर प्रतिस्पर्धा पैदा करके संघर्षों को ट्रिगर या खराब कर सकते हैं।

इन चिंताजनक निष्कर्षों के बावजूद, शोधकर्ता इस बात पर ज़ोर देते हैं कि शांति और स्थिरता के बीच विपरीत संबंध अपरिहार्य नहीं है। सैद्धांतिक रूप से देश पर्यावरणीय स्थिरता और शांति दोनों हासिल कर सकते हैं।

शोधकर्ताओं के अनुसार इस शोध के निष्कर्ष भविष्य के काम के लिए कई महत्वपूर्ण दिशाओं का संकेत देते हैं। भविष्य के अध्ययनों को इस बात पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए कि संघर्ष के जोखिमों को संभावित रूप से बाहरी किए बिना सभी के लिए व्यापक रूप से स्थायी शांति कैसे प्राप्त की जा सकती है और कैसे बनाए रखी जा सकती है।❑

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के जनसांख्यिकी विशेषज्ञ डॉ. कोठारी नहीं रहे

बड़ा नाम कमाने वाले अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के प्रतिभाशाली जनसांख्यिकीविद् डॉ. देवेन्द्र कोठारी नहीं रहे। गत माह जयपुर में उनका अचानक निधन हो गया, लेकिन अपने अकादमिक काम में वे हमेशा जीवित रहेंगे। जनसंख्या नियंत्रण के लिए उनका बनाया हुआ 'विकल्प' मॉडल कामयाब रहा और उन्हें अंतर्राष्ट्रीय ख्याति दिलाई।

डॉ. कोठारी का दशकों तक फैला शानदार करियर रहा, जिसके दौरान उन्होंने भारत की जनसांख्यिकी नीतियों और मानव संसाधन रणनीतियों में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। अपने विषय के प्रति उनमें अनोखा जुनून था। आधिकारिक आंकड़ों के साथ उनकी तर्कपूर्ण टिप्पणियां और लेख देश-विदेश के प्रमुख अखबारों तथा अकादमिक प्रकाशनों में भरपूर छपते थे और लोग उन्हें चाव से पढ़ते थे।

डॉ. कोठारी ने हार्वर्ड विश्वविद्यालय से जनसंख्या विज्ञान में स्नातकोत्तर उपाधि तथा ऑस्ट्रेलियाई राष्ट्रीय विश्वविद्यालय से जनसांख्यिकी में पीएचडी की उपाधि प्राप्त की। 14 साल से अधिक समय (1987-2000) तक इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ हेल्थ मैनेजमेंट एंड रिसर्च (आईआईएचएम आर), जयपुर, जो अब विश्वविद्यालय है, से जुड़े रहे। उन्होंने जनसंख्या और विकास लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए राजस्थान के राजीव गांधी जनसंख्या मिशन, के निदेशक के रूप में भी काम किया। आंध्र प्रदेश सरकार के भी जनसंख्या नियंत्रण के प्रयासों में सलाहकार रहे। डॉ. कोठारी ने उस टीम का नेतृत्व किया, जिसने मध्य प्रदेश (2000) और राजस्थान (1998) के लिए राज्य-विशिष्ट जनसंख्या नीतियों का मसौदा तैयार किया।

उन्होंने परिवार कल्याण कार्यक्रम के कार्यान्वयन की समीक्षा के लिए स्वास्थ्य और परिवार नियोजन मंत्रालय द्वारा गठित राष्ट्रीय समिति की अध्यक्षता की। डॉ. कोठारी राष्ट्रीय जनसंख्या आयोग के तहत गठित विशेषज्ञ समूह के सदस्य थे। डॉ. कोठारी को योजना आयोग के तहत जनसंख्या नीति और अनुसंधान सलाहकार समूह की संचालन समिति के सदस्य के रूप में नामित किया गया था। उन्होंने जनसंख्या स्थिरीकरण के मुद्दों की एडवोकेसी में प्रमुख भूमिका निभाई।

डॉ. कोठारी ने 'विकल्प' नाम से विख्यात जनसंख्या कार्यक्रम प्रबंधन के वैकल्पिक ढांचे की अवधारणा और क्षेत्र परीक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसे 1995 में राजस्थान के तत्कालीन मुख्यमंत्री ने लॉन्च किया जिसे बाद में विभिन्न राज्य सरकारों ने इसे अपनाया। इस ढांचे ने अंतर्राष्ट्रीय ध्यान आकर्षित किया और इसे यूएनएफपीए, न्यूयॉर्क द्वारा अपने प्रकाशन: स्टेट ऑफ वर्ल्ड पॉपुलेशन, 1997 में परिवार नियोजन सेवाएं प्रदान करने के लिए एक सफल मॉडल के रूप में मान्यता दी। अपने जीवन के संध्याकाल में उन्होंने भारत की युवा आबादी को गुणवत्ता वाली शिक्षा और कौशल से लैस कर देश की आर्थिक गतिविधियों में भागीदार बनाने का एचडी प्लस मॉडल विकसित किया जिस पर देश के ही नहीं विदेशी विशेषज्ञों का ध्यान आकर्षित किया। देश के मानव संसाधन विकास पर उन्होंने अपनी नई पुस्तक पूरी की ही थी कि नियति ने उन्हें हमसे छीन लिया। उनके निधन से भारत के सतत विकास के लिए परिवर्तनकारी नेतृत्व और अटूट प्रतिबद्धता के एक युग का अंत हो गया है।

डॉ. कोठारी का विराट व्यक्तित्व था। उनके साथ मजे से बहस की जा सकती थी। उन्होंने दुनिया देखी थी। भारत के हालात पर उनके मन में पीड़ा थी। वे भारत को चीन जैसा विकसित देखना चाहते थे।

वे राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति के सदस्य थे तथा उसकी कार्यकारिणी में कोषाध्यक्ष भी रह चुके थे। ❑

श्रीलाल मोहता की स्मृति में बातपोशी कला का प्रदर्शन

बीकानेर की प्रौढ़ शिक्षण समिति के सभागार में कला मर्मज्ञ श्रीलाल मोहता की स्मृति में 'कला सृजनमाला' श्रंखला के अंतर्गत विस्मृत हो रही 'बातपोशी' कला का प्रदर्शन आयोजित किया गया। यह आयोजन 'परंपरा' संस्थान, 'प्रज्ञा परिवृत्त', बीकानेर प्रौढ़ शिक्षण समिति और उरमूल सीमांत समिति, बज़्जू ने 16 मई को मिल कर किया।

कार्यक्रम में शिक्षाविद् हरिवल्लभ बोहरा ने श्रोताओं के हुंकारे के साथ बातपोशी कला में 'मूमल-महेंद्र री बात' की प्रस्तुति दी।

साहित्यकार मधु आचार्य ने जलसे की अध्यक्षता करते हुए कहा कि बातपोशी मूल रूप से राजस्थान की कला है जिसके संरक्षण और शोध की आज महती आवश्यकता है। उन्होंने स्वर्गीय डॉ. श्रीलाल मोहता द्वारा निःस्वार्थ भाव से किये गये लोक कलाओं के संरक्षण के काम को अद्वितीय बताया।

समिति की सचिव सुशीला ओझा ने आगंतुकों का स्वागत किया। अतिथि कलाकारों का शॉल, साफा पहिना कर तथा स्मृति चिन्ह देकर सम्मान किया गया। प्रज्ञा परिवृत्त के सचिव एडवोकेट गिरिराज मोहता ने सभी का आभार व्यक्त किया।❑

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा
7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

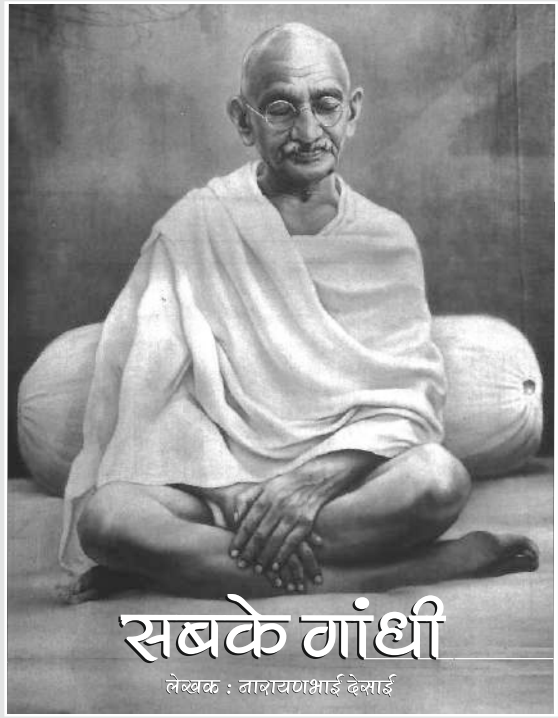

सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

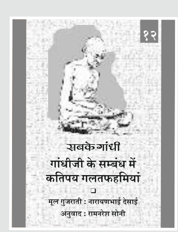

सबके गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च अलग से देय होगा।